मीमांसा

सरमा कुतिया नहीं थी, मनुष्य थी तभी वह तथा उसका पुत्र मानुषी भाषा बोलते थे। सरमा वैदिक नाम है। ऋग्वेद में सरमा इंद्र की दूती बनकर पणियों को धन देने के लिए उन्हें चेतावनी देने जाती है और हेकड़ी से बात करती है। 'वेद क्या कहते हैं?' का अड़तालीस ( )वां संदर्भ देख सकते हैं। श्रुतश्रवा का वीर्य सर्पिणी ने पी लिया तब उससे सोमश्रवा पैदा हो गये, यह कथन असत्य है। वस्तुतः सर्प का गणचिह्न रखने वाले नागवंशी मनुष्यों की किसी स्त्री को श्रुतश्रवा ने गर्भवती करके उससे सोमश्रवा को पैदा किया होगा। बीच में दूसरी कथा आ जाती है, उसे आगे देखें।

. आरुणि उद्दालक, उपमन्यु तथा वेद की गुरु–भक्ति

यही समय है, आयोदधौम्य नामक ऋषि थे, जिनके तीन शिष्य थे– उपमन्यु, आरुणि पांचाल और वेद। एक दिन ऋषि ने पांचाल देशीय आरुणि से कहा–बेटा! खेत में जाओ, उसकी मेड़ बांध दो, अन्यथा खेत का पानी बह जायेगा। आरुणि गया, धान का खेत था। पानी बरसा था। एक जगह मेड़ टूट जाने से पानी बह रहा था। आरुणि मेड़ बांधने का प्रयत्न करता था, किंतु मिट्टी बह जाती थी। बारंबार प्रयत्न करने पर भी वह सफल नहीं हुआ, अतएव उस जगह पर वह स्वयं लेट गया। पानी रुक गया।

कुछ समय के बाद ऋषि ने आरुणि की याद की। शिष्यों ने बताया कि वह आपकी ही आज्ञा से मेड़ बांधने गया है। ऋषि अन्य शिष्यों को लेकर चल पड़े कि देखें, इतनी देर उसे क्यों हो रही है! खेत पर दिखायी नहीं दिया, क्योंकि वह तो जमीन पर लेटा अपने शरीर को ही मेड़ बना दिया था। ऋषि ने पुकारा, तो आरुणि मेड़ से उठकर गुरु के पास आ गया और कहा–गुरुदेव! आपको प्रणाम करता हूं। आज्ञा दीजिये, क्या काम करूं?

गुरु ने देखा कि आरुणि मेड़ की मिट्टी का उद्दलन-विदीर्णन करके उठा है, तो उन्होंने उसे कहा–बेटा! पांचाल देशीय आरुणि! तू आज से उद्दालक हो गया है।

ऋषि आयोदधौम्य ने आरुणि को वेद-शास्त्र का ज्ञान दिया और वह विद्याग्रहण कर अपने पांचाल देश चला गया। यह देश आज का उत्तर प्रदेश का कन्नौज क्षेत्र है।

गुरु आयोदधौम्य ने दूसरे शिष्य उपमन्यु को गायों की सेवा में लगाया। उपमन्यु दिन भर गायों की सेवा में रहता और संध्याकाल में गुरु के सामने खड़ा होकर नमस्कार करता।

गुरु ने पूछा–बेटा! तुम कैसे निर्वाह करते हो? तुम हृष्ट-पुष्ट दिखते हो।

उपमन्यु–मैं भोजन के लिए भिक्षा कर लेता हूं।

गुरु–मुझे अर्पित किये बिना तुम्हें भिक्षा का उपयोग नहीं करना चाहिए।

उपमन्यु ने गुरु की आज्ञा स्वीकार ली। वह भिक्षा करके जो लाता, गुरु को अर्पित कर देता। गुरु उपमन्यु की सारी भिक्षा ले लेते थे। उपमन्यु चुपचाप गौओं की सेवा में लग जाता। संध्या के समय आकर गुरु को नमस्कार करता।

गुरु ने कहा–बेटा! तुम्हारी लायी हुई भिक्षा मैं पूरी ले लेता हूं, तो तुम अपना निर्वाह कैसे करते हो?

उपमन्यु ने कहा–मैं पहली लायी हुई भिक्षा आपको दे देता हूं। उसके बाद अपने लिए पुनः भिक्षा कर लेता हूं।

गुरु ने कहा–यह न्याय-विरुद्ध है। तुम दूसरे भिक्षाजीवी लोगों की जीविका में बाधा डालते हो। अतएव तुम लोभी हो।

उपमन्यु ने दुबारा भिक्षा करना बंद कर दिया। एक दिन गुरु ने पूछा–उपमन्यु! तुम अपनी जीविका कैसे चलाते हो?

उपमन्यु ने कहा–मैं गायों का दूध पीकर निर्वाह करता हूं। गुरु ने कहा–मैंने तुम्हें गायों से दूध लेने की आज्ञा नहीं दी है, अपितु केवल गायों की सेवा करने की आज्ञा दी है।

उपमन्यु ने गुरु की आज्ञा मानकर गायों का दूध पीना बंद कर दिया। एक दिन गुरु ने पूछा–उपमन्यु! अब तुम अपना निर्वाह कैसे करते हो?

उपमन्यु ने कहा–बछड़े गाय का दूध पीते हैं। उनके मुंह से दूध का फेन गिरता है। मैं उसी को चाटकर अपना निर्वाह कर लेता हूं।

गुरु ने कहा–बछड़े दया करके तुम्हारे लिए अधिक दूध उगल देते होंगे, अतएव तुम उनकी जीविका में बाधा डालते हो। तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए।

उपमन्यु उस दिन से बछड़ों के उगले फेन को भी पीना बंद कर दिया और गौओं की सेवा करता रहा। अब उपमन्यु न भिक्षा का अन्न खाता, न दुबारा भिक्षा करता, न गायों का दूध पीता और न बछड़ों का उगला फेन ही खाता। अतएव उसने भूख से पीड़ित होकर एक दिन आक (मदार) के पत्ते खा लिए। आक के पत्ते कड़वे होते हैं। उसका प्रभाव ऐसा हुआ कि उसकी आंखों की

रोशनी जाती रही, और वह इधर-उधर भटकते-भटकते एक कुएं में गिर पड़ा।

शाम तक गुरु ने उसकी प्रतीक्षा की, फिर खोजने निकले। वे पुकारने लगे– ओ उपमन्यु! कहां हो बेटे। मेरे पास चले आओ। उपमन्यु ने जब गुरु की आवाज सुनी तो जोर से कहा–गुरु जी! मैं कुएं में गिर गया हूं।

गुरु ने कहा–बेटा! दोनों अश्विनीकुमार देवताओं के वैद्य हैं। तुम उनकी स्तुति करो। वे तुम्हारी आंखें ठीक कर देंगे।

गुरु जी की उक्त बातें सुनकर उपमन्यु ऋग्वेद के मंत्रों द्वारा अश्विनी की प्रार्थना करने लगा–हे अश्विनीकुमारो! आप सृष्टि के पहले से ही विद्यमान हैं। अतएव आप पूर्वज हैं। आप चित्रभानु हैं। मैं तप संबलित वाणी द्वारा आपकी स्तुति करता हूं। आप आनंद और दिव्य स्वरूप हैं। आप सुंदर पंख वाले दो पक्षी की तरह स्वयं रहने वाले हैं। आप में न रजोगुण है और न अभिमान है। आप विश्व में आरोग्य का विस्तार करते हैं। आप सुंदर पंख वाले दो पक्षी के समान बड़े सुंदर हैं। आप पारलौकिक उन्नति के साधनों से संपन्न हैं। नासत्य और दस्र ये आपके दो नाम हैं। आप सुंदर नासिका वाले, विजयी, सूर्य के पुत्र, अतः स्वतः सूर्यरूप में स्थित होकर रात-दिन रूप उजले-काले धागे से संवत्सर (वर्ष) रूप वस्त्र बुनते रहते हैं और वर्ष रूपी वस्त्र द्वारा तेजी से देवयान तथा पितृयान नामक सुंदर मार्ग प्रशस्त करते हैं।

हे अश्विनो! कालशक्ति ने जीव रूपी पक्षी को अपना ग्रास बना रखा है। आप अश्विनों ने उस जीव को बंधनों से छुड़ाकर मुक्त किया है। मायासक्त जीव विषयों में डूबे हुए अपनी इंद्रियों के अधीन हैं। इसलिए वे अपने को इंद्रियों के अधीन मानते हैं। दिन और रात, प्रिय फल देने वाली तीन सौ साठ दुधारू गायें हैं। वे एक ही संवत्सर (वर्ष) रूपी बछड़े को जन्म देतीं और उसे पालती हैं। वह बछड़ा सबको पैदा करता है और मारता है। ज्ञान की इच्छा वाले मनुष्य उस बछड़े को आधार बनाकर गौओं से तत्त्वज्ञान का दुग्ध दुहते रहते हैं। आप अश्विनीकुमार ही उन गौओं के दुहने वाले हैं।

हे अश्विनीकुमारो! कालचक्र की एक ही नाभि है, और वह है संवत्सर (वर्ष) जिस पर रात-दिन मिलकर सात सौ बीस अरे टिके हुए हैं। वे सब बारह महीने रूपी प्रधियों (पुट्ठों) में जुड़े हुए हैं। यह अनादि-अनंत चलने वाला कालचक्र बिना नेमि (परिधि) के ही उपद्रवी गति से घूमता रहता है और लोक-परलोक की प्रजाओं का विनाश करता रहता है।

हे अश्विनो! बारह राशि वाले अरों, छह ऋतु वाली नाभियों तथा संवत्सर रूपी एक धुरी वाला यह काल चक्र चल रहा है। यही परिवर्तनशील प्रपंच को

धारण करता है। इसी में प्राकृतिक शक्तियां स्थित हैं। हे अश्विनो! मुझे दुखों से छुटकारा दो। आप में अगाध अमृत है। आपका सुयश सर्वोच्च है। आप पर्वत छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वी पर विचर रहे हैं। आप आनंद और शक्ति की वर्षा करने वाले हैं। आप ही दिशाओं और सबका ज्ञान कराने वाले हैं। आप अनेक प्रकार की औषधियां पैदा करते हैं जो विश्व का पोषण करती हैं। आप दोनों का नाम नासत्य है। मैं आपकी पूजा करता हूं। आप अमर हैं, सत्य के पोषक और उसके विस्तारक हैं। आपके बिना देवता भी सत्य नहीं पा सकते। युवक माता-पिता पहले मुख में अन्न रूप गर्भ धारण करते हैं। वही अन्न पुरुषों में वीर्य और स्त्रियों में रक्त बनकर फिर स्त्री के गर्भ में जड़ शरीर बन जाता है। फिर जीव देह सहित पैदा होते हैं और माता का दूध पीते हैं। हे अश्विनो! आप इन जीवों को आत्मज्ञान देकर इन्हें बंधनों से मुक्त करते हैं। मेरी जीवन यात्रा के लिए मेरे नेत्रों को रोग-मुक्त करें।

हे अश्विनो! मैं आपकी प्रशंसा नहीं कर सकता। इस समय मैं नेत्रहीन अंधा हूं। रास्ता पहचानने में भूल हो जाती है। इसीलिए इस गहरे कुएं में पड़ा हूं। मैं आपकी शरण हूं।

दोनों अश्विनीकुमार वहां आये। उन्होंने कहा-उपमन्यु! हम तुम पर प्रसन्न हैं, तुम्हें पूआ दे रहे हैं, इसे खा लो। उपमन्यु ने कहा-भगवन! मैं गुरु को अर्पित किये बिना नहीं खा सकता।

अश्विनीकुमारों ने कहा-उपमन्यु! पहले तुम्हारे गुरु ने भी हमारी स्तुति की थी। हमने उन्हें भी पूआ दिया था। उन्होंने अपने गुरु को अर्पित किये बिना उसको खाया था। तुम्हारे गुरु ने जैसा किया था, तुम भी वैसा कर लो।

उपमन्यु ने कहा-गुरुजी को अर्पित किये बिना मैं इसे नहीं खा सकता।

अश्विनीकुमारों ने कहा-हम तुम्हारी गुरुभक्ति से बहुत प्रसन्न हैं। तुम्हारे गुरु के दांत तो लोहे जैसे काले हैं, किंतु तुम्हारे दांत सोने जैसे चमकीले हो जायंगे। तुम्हारी आंखें ठीक हो जायंगी और तुम कल्याण के भागी बनोगे।

उपमन्यु की आंखें ठीक हो गयीं। उसने अपने गुरु के दर्शन किये। गुरु उपमन्यु पर बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि तुम्हें सब वेद-शास्त्र का ज्ञान हो जायगा। इस प्रकार उपमन्यु की परीक्षा हुई।

आयोदधौम्य का तीसरा शिष्य वेद था। उन्होंने वेद को अपने घर में सेवा कार्य दिया और कहा-सेवा करो, तुम्हारा कल्याण होगा। वेद ने गुरु की आज्ञा

स्वीकारी। गुरु वेद को सदैव भारी बोझा ढोने में बैल की तरह लगाये रहते थे। वेद सरदी–गरमी, भूख–प्यास सह कर सेवा कार्य करते थे और गुरु के अनुकूल रहते थे। ऐसा जब बहुत समय बीत गया, तब गुरु उन पर बहुत प्रसन्न हुए। गुरु की प्रसन्नता से वेद ने सर्वज्ञता प्राप्त कर ली। इस प्रकार वेद की परीक्षा का वृत्तांत कहा गया।

मीमांसा

पांचाल देशीय यही आरुणि उद्दालक नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्होंने अपने पुत्र श्वेतकेतु को तत्त्वमसि का उपदेश दिया जो छांदोग्य उपनिषद् में है। इन्हीं उद्दालक के शिष्य याज्ञवल्क्य हुए जिन्होंने शतपथ ब्राह्मण की रचना की। इसी शतपथ के अंत भाग में बृहदारण्यक उपनिषद् है। जिसमें जनक को ब्रह्मज्ञान दिया गया है।

उपमन्यु पर कसौटी बहुत कठोर हुई है। अश्विनी वैदिक देवता हैं जो प्राकृतिक शक्ति है। इसको समझने के लिए 'वेद क्या कहते हैं?' का अट्ठावन ( )वां संदर्भ 'अश्विनो' पढ़ना चाहिए।

वेद भी गुरु की कसौटी में उत्तीर्ण हुए। इनकी कथा आगे चलती है (अध्याय)।

. वेद की उदारता, उत्तंग की गुरु–भक्ति

गुरु आयोदधौम्य के गुरुकुल में समावर्तन संस्कार के बाद स्नातक होकर वेद अपने घर लौटे। फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किये। आचार्य वेद के तीन शिष्य थे। वे अपने शिष्यों को यह नहीं कहते थे कि 'काम करो, गुरु–सेवा में लगे रहो।' वे अपने गुरु के घर में बैल की तरह काम कर चुके थे, इसलिए वे अपने शिष्यों के साथ अधिक सहानुभूति का बरताव करते थे।

जनमेजय तथा पौष्य नाम वाले दो क्षत्रियों ने वेद को अपना पुरोहित बनाया। एक बार वेद यजमान के कार्यवश बाहर जाने लगे, अतएव उन्होंने अपने शिष्य उत्तंग को घर सम्हालने की जिम्मेदारी दी। वेद तो बाहर चले गये और उत्तंग गुरु का घर सम्हालने लगे। एक दिन वेद के घर में रहने वाली स्त्रियों ने उत्तंग को बुलाकर कहा–तुम्हारी गुरु–पत्नी रजस्वला हुई हैं और उनके पति बाहर हैं। उनका ऋतुकाल निष्फल न हो, तुम वैसा करो। इसको लेकर गुरु–पत्नी बड़ी चिंता में हैं।

उत्तंग ने कहा–'मैं गुरुपत्नी के साथ समागम रूप पाप कर्म नहीं कर सकता। गुरु जी ने यह आज्ञा नहीं दी है कि तुम न करने योग्य कार्य करो।' जब वेद घर लौटे तब उत्तंग के उत्तम चरित्र की बात सुनकर उन पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उत्तंग से कहा–बेटा! तुम्हारा कौन-सा उत्तम काम करूं? तुम प्रसन्न रहो। तुम्हारी विद्या पूरी हुई। तुम अपने घर जाओ।

उत्तंग ने कहा–गुरुदेव! मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूं? आपकी आज्ञा मिलने पर मैं कोई प्रिय वस्तु गुरुदक्षिणा के रूप में अर्पित करना चाहता हूं। गुरु ने कहा–तुम अभी कुछ दिन और मेरे यहां रहो। उत्तंग ने पुनः गुरु दक्षिणा देने की बात कही। आचार्य वेद ने कहा–तुम बारंबार दक्षिणा देने की बात करते हो, तो घर में जाकर अपनी गुरुवाइन से पूछ लो, वे क्या चाहती हैं।

उत्तंग ने गुरुवाइन से पूछा, तो उन्होंने कहा–बेटा! राजा पौष्य की पत्नी ने अपने दोनों कानों में जो कुंडल पहन रखा है, उन्हें मेरे लिए मांग लाओ। आज के चौथे दिन पुण्यकव्रत है। उस दिन मैं उन कुंडलों को पहनकर ब्राह्मणों को भोजन परोसना चाहती हूं।

उत्तंग कुंडल के लिए चल दिये। रास्ते में एक बहुत बड़े बैल पर एक विशालकाय मनुष्य को बैठकर जाते देखा। उसने उत्तंग से कहा–उत्तंग, तुम इस बैल का गोबर खा लो। उत्तंग को उस मनुष्य की बात अच्छी नहीं लगी। उस मनुष्य ने पुनः कहा–उत्तंग, तुम्हारे गुरु वेद ने भी इसे खाया है, तुम भी बिना विचार किये खा लो। उत्तंग ने उस मनुष्य की बात मान ली और उस बैल का गोबर तथा मूत्र खा-पीकर जल्दी के कारण खड़े-खड़े कुल्ला किया, हाथ-मुंह धोया और चल दिया। उत्तंग ने राजा पौष्य के पास पहुंचकर उसे आशीर्वाद देते हुए कहा–मैं याचक होकर आपके पास आया हूं। राजा पौष्य ने कहा–मैं आपका सेवक हूं, आज्ञा दीजिए। उत्तंग ने कहा–आपकी रानी के दोनों कुंडल चाहता हूं। उन्हें मैं गुरु-मां को दक्षिणा रूप में देना चाहता हूं। पौष्य ने कहा–भगवन! आप स्वयं अंतःपुर में जाकर रानी से मांग लें। उत्तंग भीतर गये, परंतु रानी नहीं दिखीं। लौटकर बताया कि रानी नहीं थीं। राजा पौष्य ने कहा–निश्चित है, आप जूठे मुंह हैं, स्मरण कीजिए। मेरी रानी पतिव्रता है। वह जूठे मुंह वाले मनुष्य से नहीं देखी जा सकती। उत्तंग को स्मरण हुआ कि मैं रास्ते में उतावली में ही खड़े-खड़े हाथ-मुंह धोया था जिससे वे शुद्ध नहीं हो सके।

अब की बार उत्तंग पूरा पवित्र होकर रानी के पास गया और उनको मिला। रानी ने प्रसन्नता से कुंडल दिये और उत्तंग को सावधान किया कि नागराज तक्षक इन कुंडलों को पाना चाहता है। आप उससे सावधान रहिएगा।

उत्तंग कुंडल पाकर प्रसन्न हुआ और राजा के पास आकर बताया। राजा उत्तंग को भोजन कराना चाहे। उत्तंग ने स्वीकारा। भोजन सामने आया। उत्तंग ने देखा कि भोजन ठंडा है और उसमें बाल पड़ा है। उत्तंग ने कहा–यह अपवित्र अन्न है। आप मुझे अपवित्र अन्न खिलाना चाहते हैं, इसलिए आप अंधे हो जायंगे। राजा पौष्य ने कहा–उत्तंग! आप शुद्ध भोजन को अशुद्ध बता रहे हैं, इसलिए आप संतानहीन हो जायंगे।

जब राजा ने भोजन देखा तब उसे भी लगा कि भोजन अशुद्ध है, अतएव उसने उत्तंग से क्षमा मांगी।

राजा ने कहा–आपका शाप मुझ पर लागू न हो, कृपया ऐसा उपाय करें। उत्तंग ने कहा–आप पहले अंधा होकर फिर ठीक हो जायंगे। अब आप भी ऐसा प्रयत्न करें कि आपका शाप मुझ पर लागू न हो। राजा ने कहा–मैं अपना शाप लौटाने में असमर्थ हूं, क्योंकि मेरा क्रोध अभी तक शांत नहीं हो रहा है। क्या आप यह नहीं जानते–"ब्राह्मण (ज्ञानी) का हृदय मक्खन की तरह तुरंत पिघलने वाला होता है। उसकी केवल वाणी छूरे की धार की तरह तेज होती है। परंतु क्षत्रिय (राजनेता) की वाणी मक्खन की तरह कोमल होती है और उसका हृदय छूरे की तेज धार की तरह होता है।"

उत्तंग ने कहा–राजन! आपका शाप मुझ पर नहीं लगेगा, क्योंकि मैंने सच कहा था कि भोजन अशुद्ध है। उत्तंग अपने गुरु–आश्रम के लिए चल पड़े। मार्ग में उन्होंने नंगा क्षपणक को पीछे आते देखा जो कभी दिखायी देता और कभी अदृश्य हो जाता।

कुछ दूर चलने पर उत्तंग एक जलाशय के पास कुंडल को रखकर स्नान करने लगे। क्षपणक ने तेजी से आकर उन दोनों कुंडलों को उठा लिया और भाग खड़ा हुआ। उत्तंग ने उसका पीछा किया। वह क्षपणक (नंगा साधु) नागराज तक्षक ही था। वह अपना सर्प का रूप धारणकर एक बिल में घुस गया और वह पाताल नागलोक में जाकर अपने घर में पहुंच गया।

उत्तंग ने पौष्य की रानी की बात याद कर नागराज का पीछा किया। उसने अपने डंडे से बिल को खोदना शुरू किया। इंद्र ने उत्तंग का कष्ट देखकर उसके पास अपना वज्र भेज दिया। फलतः वज्र ने उत्तंग के डंडे में प्रवेश कर

. **नवनीतं हृदयं ब्राह्मणस्य वाचि क्षुरो निहितस्तीक्ष्णधारः।**
तदुभयमेतद् विपरीतं क्षत्रियस्य वाङ्नवनीतं हृदयं तीक्ष्णधारं
(आदि पर्व, अध्याय , श्लोक)

बिल को विदीर्ण कर दिया और उस रास्ते से उत्तंग पाताल नागलोक में पहुंच गया। नागलोक की कहीं सीमा नहीं दिखती थी। नागलोक के महल, क्रीड़ास्थल आदि सब अद्‌भुत थे। उत्तंग ने श्लोकों द्वारा नागों की स्तुति की– "ऐरावत जिनके राजा हैं, जो युद्ध में देखने योग्य हैं, उन नागों की जय हो। नाग लोग बड़े सुंदर हैं। वे कानों में कुंडल धारण करते हैं। गंगा नदी के उत्तर तट पर बहुत नागों के घर हैं। वहां रहने वाले बड़े-बड़े सर्पों की मैं स्तुति करता हूं।"

नागों की स्तुति करने पर भी जब उत्तंग कुंडल नहीं पा सके, तब वे चिंतित हो उठे। इतने में उन्होंने देखा कि दो स्त्रियां सुंदर करघे पर कपड़ा बुन रही हैं। उत्तंग ने देखा कि वे दोनों स्त्रियां काले और सफेद दो प्रकार के सूत से वस्त्र बुनती हैं। उन्होंने बारह अरों का एक चक्र देखा जिसे छह कुमार घुमा रहे हैं। वहां एक श्रेष्ठ पुरुष भी दिखायी दिया जिसके पास एक सुंदर घोड़ा था। उत्तंग ने उनकी स्तुति की–यह अनादि-अनंत कालचक्र तीन सौ साठ अरे तथा चौबीस पर्व वाला है। इसे छह कुमार घुमा रहे हैं। दो युवतियां काले और सफेद धागे से विश्व रूप चरखे पर वासना का वस्त्र बुन रही हैं। वज्रधारी इंद्र को नमस्कार है।

उस पुरुष ने उत्तंग से कहा–मैं तुम पर प्रसन्न हूं। तुम क्या चाहते हो? उत्तंग ने कहा–सब नाग मेरे अधीन हो जायं। उस पुरुष ने उत्तंग से कहा–इस घोड़े के गुदा में फूंक मारो। उत्तंग ने घोड़े के गुदा में फूंक मारी। फूंक मारते ही घोड़े के शरीर से आग धधकने लगी। फिर तो सारा नागलोक धुंए से भर गया। तक्षक घबरा गया। वह दोनों कुंडलों को लाकर उत्तंग को दे दिया। वह वहां के पुरुष की आज्ञा से उसी घोड़े पर बैठकर आचार्य वेद के घर पर आ गया और गुरुवाइन को दोनों कुंडल दे दिये।

आचार्य वेद ने उत्तंग से पूछा कि तुम्हें आने में देर क्यों हुई? उत्तंग ने सब बताया कि तक्षक उसके कुंडल लूटकर नागलोक में अपने घर में छिप गया था। फिर उत्तंग ने अपने उपाध्याय से पूछा–गुरुदेव। मैंने वहां दो स्त्रियों को करघे पर वस्त्र बुनते देखा। करघे पर काले और सफेद दो रंग के सूत थे। वह सब क्या था? वहीं मैंने एक चक्र देखा जिसमें बारह अरे थे। छह कुमार उस चक्र को घुमा रहे थे। वहां एक पुरुष देखने में आया। एक बहुत बड़ा अश्व भी दिखायी दिया। इधर से शुरू में जाते समय मैंने एक बैल देखा, जिस पर एक पुरुष सवार था। उसने मुझे बैल का गोबर खाने के लिए कहा, और उसने यह भी कहा कि इसे तुम्हारे उपाध्याय ने भी खाया है। यह सब क्या था?

उपाध्याय आचार्य वेद ने कहा–वे दोनों स्त्रियां धाता-विधाता हैं। काले-सफेद तागे रात-दिन हैं। चक्र संवत्सर (वर्ष) है। उसमें बारह अरे बारह महीने हैं। छह कुमार चक्र घुमाने वाले छह ऋतुएं हैं। जो वहां पुरुष था वह पर्जन्य (बरसने वाला बादल) है। जो अश्व था वह अग्नि है। इधर से जाते समय मार्ग में जो तुमने बैल देखा था, वह नागराज ऐरावत है। जो उस पर चढ़ा हुआ पुरुष था, वह इंद्र है। तुमने जो बैल का गोबर खाया, वह अमृत है। इसीलिए तुम नागलोक में जाकर भी मरे नहीं। इंद्र मेरे सखा हैं। उनकी कृपा से ही तुम दोनों कुंडल वापस ला सके हो। तुम पर मैं प्रसन्न हूं। अब तुम अपने घर जा सकते हो।

उपाध्याय की आज्ञा पाकर उत्तंग ने हस्तिनापुर की तरफ प्रस्थान किया। वहां वे राजा जनमेजय से मिले। जनमेजय ने पहले ही तक्षशिला पर विजय करके उस पर अपना अधिकार कर लिया था। उत्तंग ने जनमेजय से कहा–नागराज तक्षक ने तुम्हारे पिता को डस कर उन्हें मार डाला है। अतएव तुम उससे बदला लो। तुम सर्पयज्ञ करो और उसमें सर्पों को भस्म कर दो। (आदि पर्व, अध्याय)।

मीमांसा

आदि पर्व के इस तीसरे अध्याय में एक सौ अट्ठासी ( ) अनुच्छेद या श्लोक हैं। इस अध्याय में अधिकतम गद्य अंश हैं। जो महाभारत-रचनाकाल के भी पूर्व का लगता है। इतना ही नहीं, आदि पर्व के इस तीसरे अध्याय से लेकर अट्ठावन ( )वें अध्याय तक महाभारत से हटकर विषय है। इस अट्ठावन ( )वें अध्याय के बाद महाभारत का उपक्रम उपस्थित होता है।

उपाध्याय वेद का अपने शिष्यों के प्रति सहानुभूति और उत्तंग का त्याग सराहनीय हैं। कुंडल के पीछे तक्षक का लगना, पृथ्वी में छेद कर नागलोक में पहुंचना, तथा अन्य अनेक कथा के अंश बच्चों को समझाने-जैसी बातें हैं। संवत्सर, ऋतु, दिन आदि का वर्णन प्रकृति के चित्रण में ठीक है। राजा पौष्य और उत्तंग में परस्पर शाप की मारामारी छिछिलापन है। उत्तंग डंडे से छेद खोद रहे थे पाताल नागलोक जाने के लिए, तो इंद्र ने दया करके अपना वज्र भेज दिया और उसने उत्तंग के डंडे में घुसकर पृथ्वी में छेद कर दिया जिससे उत्तंग नागलोक पहुंच सके। यह सब बाल-विनोद के अलावा क्या है?

वस्तुतः समर्थ नागवंशी मनुष्यों और आर्यों में संघर्ष रहा करता था। एक दूसरे को नीचा दिखाने में दोनों लगे रहते थे। उसी स्थिति की पुरानी बातें कहानी बनीं और गाथात्मक रूप में बदलते-बदलते विकृति रूप में काव्यों में आयीं। कारण-कार्य-व्यवस्था-रहित कथन तो धर्म के नाम पर खूब चलता ही है, फिर पुराणों में अतिशयोक्ति तथा असंभव कथन का क्या पूछना ! उनका तो इनमें बोलबाला ही है। अतएव पारखी दृष्टि से सत्य को समझें।

. च्यवन नाम क्यों पड़ा?

शौनक जी ने कहा–मैं भृगुवंश की कथा सुनना चाहता हूं। सूतपुत्र उग्रश्रवा ने कहा–भृगु के पुत्र च्यवन हुए। इन्हें भार्गव भी कहते हैं। च्यवन के पुत्र का नाम प्रमति था। प्रमति के पुत्र रुरु थे जो घृताची नामक अप्सरा से पैदा हुए थे। रुरु के पुत्र शुनक थे।

भृगु की पत्नी का नाम पुलोमा था। वह जब कन्या रूपी युवती थी, तब पुलोमा नाम के ही राक्षस ने उसका वरण किया था, किंतु पीछे पुलोमा नाम की युवती का उसके पिता ने भृगु के साथ विवाह कर दिया। पुलोमा भृगु के घर पर रह रही थी। वह गर्भवती थी। एक दिन जब भृगु बाहर स्नान करने गये थे, पुलोमा नामक राक्षस वहां आ गया और पुलोमा युवती को देखकर मोहित हो गया। उसका मन उसका अपहरण करने का हुआ। इतने में पुलोमा-राक्षस ने देखा कि यज्ञशाला में अग्नि जल रही है। उसने अग्निदेव से पूछा–मैं सत्य की शपथ देकर पूछता हूं, बताओ, पुलोमा-युवती किसकी पत्नी है? पहले तो मैंने ही इस सुंदरी का वरण किया था, किंतु बाद में इसके पिता ने असत्य व्यवहार करके इसका विवाह भृगु से कर दिया। आप सच-सच बतायें। मैं इस युवती को उड़ा ले जाना चाहता हूं। आज मेरा क्रोध बढ़ गया है। वस्तुतः यह मेरी भार्या थी, भृगु ने अन्यायपूर्वक हड़प लिया। इस प्रकार पुलोमा-राक्षस अग्नि से बारंबार पूछने लगा कि बताओ, यह पत्नी भृगु की है कि मेरी?

पुलोमा-राक्षस की उक्त बातें सुनकर अग्निदेव बहुत दुखी हुए। एक तरफ वे झूठ बोलने से डरते थे और दूसरी तरफ भृगु के शाप से डरते थे। अतएव उन्होंने सकुचाते हुए धीरे से कहा–दानवनंदन! यह निस्संदेह है कि पहले पुलोमा-युवती का तुमने ही वरण किया था, किंतु इसके साथ तुम्हारा विधिवत विवाह नहीं हुआ था। पिता ने पुलोमा कन्या को विधिवत भृगु को ही दिया है।

तुम्हारे वरण करने पर भी इसके पिता तुम्हें इसलिए नहीं दे रहे थे कि उनके मन में यह लोभ था कि तुमसे भी अच्छा वर उनको अपनी पुत्री के लिए मिल सकता है। फिर तो भृगु ने मुझे साक्षी बनाकर पुलोमा–कन्या का पाणिग्रहण किया था। मैं यही जानता हूं। मैं झूठ नहीं बोल सकता। संसार में झूठ का कभी सत्कार नहीं होता (अध्याय –)।

पुलोमा–दानव ने अग्नि की उक्त बातें सुनकर सुअर का रूप धारण कर लिया और गर्भवती पुलोमा युवती का अपहरण करके ले जाने लगा। उस समय पुलोमा के गर्भ में रहा बच्चा क्रोधित हो उठा और माता के पेट से च्युत होकर–गिरकर बाहर निकल आया, इसलिए इस बच्चे का नाम च्यवन हुआ। उधर बच्चा गर्भ से गिरा और इधर पुलोमा–दानव जलकर भस्म हो गया।

पुलोमा–युवती रोने लगी। उसकी आंखों के आंसुओं की बूंदों से एक बहुत बड़ी नदी बह चली। ब्रह्मा ने इस नदी का नाम वधूसरा रख दिया, जो च्यवन के आश्रम के पास प्रवाहित होती है।

भृगु जब आश्रम पर आये तब वे आग बबूला हो गये। उन्होंने पुलोमा से पूछा–तुम्हारा पता–परिचय पुलोमा–राक्षस को किसने दिया? पुलोमा ने कहा–अग्नि ने दिया, किंतु वह मेरा अपहरण करते ही भस्म हो गया।

पत्नी की इतनी बात सुनकर भृगु का अग्नि पर क्रोध बढ़ गया और उन्होंने अग्नि को शाप दिया 'तुम सब कुछ खाओगे।' अग्निदेव भी कम नहीं थे। उन्होंने भी क्रोधातुर होकर कहा–ब्रह्मन! तुमने मुझे शाप क्यों दिया? इतना दुस्साहस कैसे किया? मैं सदा सत्य बोलता हूं। पुलोमा दानव के पूछने पर मैंने सच्ची बात कह दी, तो इसमें मैंने कौन अपराध कर दिया। जो झूठी साक्षी देता है वह अपना पतन करता है और दूसरे का भी अहित करता है। जो जिस बात को जानता है और पूछने पर मौन रह जाता है, वह भी पाप का भागी होता है। मैं भी तुम्हें शाप देने की शक्ति रखता हूं। किंतु मैं शाप नहीं दूंगा, क्योंकि ब्राह्मण मेरे मान्यवर हैं।

इतना कहने के बाद भी अग्नि को गुस्सा तो बना ही रहा, अतएव वे अपने को अदृश्य कर लिये। फिर तो सारा यज्ञ–याग बंद हो गया। ऋषियों तथा देवताओं ने ब्रह्मा जी के दरवाजे पर जाकर गोहार मचाया। ब्रह्मा जी ने अग्निदेव की बड़ी स्तुति की, विनती–मादरो की, तब जाकर वे प्रसन्न हुए, और प्रकट होकर यज्ञ–याग को स्वीकारने लगे (अध्याय –)।

मीमांसा

दानव, राक्षस, ब्राह्मण आदि सब एक ही परिवार के सदस्य थे। इसीलिए पुलोमा-दानव ने पुलोमा-कन्या का पहले वरण किया था। कन्या के पिता ने इतना ही समझा कि पुलोमा-दानव से भृगु अधिक योग्य हैं।

अग्नि तो जड़ है वह बात क्या करेगी? पुलोमा-दानव सुअर भी नहीं बन सकता। हां, किसी स्त्री का अपहरण करना निंदित होने से अपहर्ता को गाली में सुअर कहा जा सकता है।

अपहरण के समय खींचातानी में पुलोमा का गर्भ च्युत हो गया होगा। इसी आधार पर बच्चे का नाम च्यवन रख दिया गया। गर्भस्थ शिशु को क्रोध नहीं आ सकता। वैसे च्यवन वैदिक नाम है। शतपथ ब्राह्मण में भी इनकी कथा है।

. नागवंशियों का गाथात्मक रूप

सूतपुत्र उग्रश्रवा कहते हैं-शौनक! भृगु के पुत्र च्यवन ने अपनी पत्नी सुकन्या से प्रमति नामक पुत्र को जन्म दिया। प्रमति ने घृताची अप्सरा से रुरु नामक पुत्र को जन्म दिया। रुरु ने प्रमद्वरा नाम की युवती से शुनक को जन्म दिया। महाभाग शौनक जी ! आप शुनक के पुत्र होने से शौनक नाम से प्रसिद्ध हुए।

उग्रश्रवा ने आगे कहा-शौनक, आपके पितामह रुरु का चरित्र बताता हूं। गंधर्वराज विश्वावसु ने मेनका अप्सरा को गर्भवती कर दिया। मेनका ने गर्भ पूरा होने पर एक कन्या को जन्म दिया और वह निर्दय स्थूलकेश नामक ऋषि के आश्रम के पास उसे छोड़कर चली गयी। स्थूलकेश ने जब नवजात कन्या को देखा तो उन्होंने दयावश उसका पालन-पोषण किया। स्थूलकेश ने उसका नाम प्रमद्वरा रखा, क्योंकि वह प्रमदाओं (सुंदरियों) में श्रेष्ठ थी। जब वह युवती हुई, तब तुम्हारे पितामह रुरु उसे देखकर मोहित हो गये। रुरु ने अपने मित्रों द्वारा अपने पिता प्रमति को अपनी यह मनोदशा कहलवायी। अतएव प्रमति ने स्थूलकेश से प्रमद्वरा सुंदरी को मांगा। बात तय हो गयी। प्रमद्वरा तथा रुरु का विवाह होने वाला था। वनवासी थे ही। वन में प्रमद्वरा को सांप ने काट लिया और वह गिरकर बेहोश हो गयी। अंततः मर गयी। बहुत-से वनवासी ऋषि-मुनि वहां आये। सब दुख प्रकट किये। रुरु तो भीड़ से हटकर वन में जोर-जोर से रोता रहा।

एक देवदूत आया। उसने रुरु से कहा–मरा हुआ मनुष्य जीवित नहीं हो सकता। हां, तुम अपनी आधी आयु उसे दे दो तो वह जी सकती है। रुरु ने अपनी आधी आयु प्रसन्नता से दे दी, और प्रमद्वरा जी गयी। फिर प्रमद्वरा–रुरु का विवाह हो गया।

इसके बाद रुरु को सर्प जाति पर क्रोध हो गया। वह जहां भी सर्प देखता, उस पर डंडे से प्रहार करता। एक दिन रुरु एक वन में डुंडुभ जाति के एक बूढ़े सांप को सोते देखा। उसे मारने के लिए उसने डंडा उठाया। डुंडुभ ने कहा–मैंने आपका क्या बिगाड़ा है जो आप मुझे मारना चाहते हैं? रुरु ने बताया कि मेरी प्रिय पत्नी को एक सांप ने काटा था, तब से मुझे सांप–जाति पर गुस्सा है।

डुंडुभ ने कहा कि वे दूसरे सांप हैं जो लोगों को डसते हैं। सापों की आकृति देखकर तुम्हें डुंडुभ को नहीं मारना चाहिए। आश्चर्य है कि डुंडुभ अनर्थ भोगने के लिए अन्य सांपों के साथ हैं, परंतु उनका स्वभाव अन्य विषैले सांपों से पृथक है (वस्तुतः डुंडुभ जाति के सांप विषरहित होते हैं)।

रुरु ने डुंडुभ की बात सुनकर उससे पूछा–तुम तो बड़े अच्छे हो। इस खराब योनि में कैसे पड़े हो? डुंडुभ ने कहा–पूर्व जन्म की बात है। मैं सहस्रपाद नाम का ऋषि था। मेरा एक ब्राह्मण मित्र था। उसका नाम खगम था। वह तपस्वी था, किंतु कटुभाषी था। एक दिन मैंने विनोद से घास का सांप बनाकर उसे डरा दिया। उसने मुझे शाप दिया कि तुम सर्प बन जाओ। परंतु उसने बताया था, कि तुम जब प्रमति के पुत्र रुरु का दर्शन करोगे, तब सर्पयोनि से मुक्त हो जाओगे। मालूम होता है, आप रुरु ही हैं! इसके बाद वह सांप का शरीर छोड़कर अपने ऋषि रूप में आ गया, और उसने रुरु से कहा–अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसा परम धर्म है। अहिंसा, सत्यभाषण, क्षमा और वेदों का स्वाध्याय ये ब्राह्मण के कर्तव्य हैं। दंड धारण, उग्रता और प्रजापालन क्षत्रियों के कर्तव्य हैं। पहले राजा जनमेजय के यज्ञ में सर्पों का महाविनाश हुआ। फिर उसी सर्प–सत्र में आस्तीक नामक ब्राह्मण के द्वारा सर्पों की रक्षा हुई (अध्याय –)।

जरत्कारु ब्रह्मचारी, यायावर एवं विचरणशील और संयमी ब्राह्मण थे। वे विचरते रहते, जहां शाम होती वहीं डेरा डाल देते थे। उन्होंने घूमते–घूमते एक समय अपने पितामहों को देखा। वे ऊपर पैर तथा नीचे सिर किये एक विशाल गड्ढे में लटक रहे थे। जरत्कारु ने पूछा–आप लोग कौन हैं? उन्होंने कहा–हम यायावर नामक मुनि हैं। हमारी संतान–परंपरा समाप्त हो रही है, इसलिए हम पतन की तरफ हैं। हमारी केवल एक संतान है जिसका नाम जरत्कारु है। वह

तपस्या में लगा है। वह न विवाह करना चाहता है और न संतान पैदा करना।

जरत्कारु आजीवन ब्रह्मचर्य से रहना चाहते थे, किंतु अब उन्होंने सोचा कि यदि मेरे अनुकूल कन्या मिल जायगी तो मैं विवाह कर लूंगा। वासुकि नाग ने अपनी बहिन जरत्कारु को दे दी और उसका जरत्कारु से विवाह हो गया। संयोग से वासुकि की बहिन का नाम भी जरत्कारु था। इन दो जरत्कारु पति-पत्नी से आस्तीक नाम का मेधावी पुत्र पैदा हुआ (अध्याय -)।

कश्यप की दो पत्नियां कद्रू और विनता थीं। कद्रू ने अपने पति से तेजस्वी एक हजार नाग-पुत्र चाहा और विनता ने केवल दो पुत्र चाहा। कद्रू से एक हजार नाग-पुत्र पैदा हुए और विनता से अरुण और गरुड दो पुत्र। अरुण तो जाकर सूरज के रथ पर बैठ गया। इसलिए सुबह सूरज उगने पर अरुण रंग आकाश में छा जाता है। गरुड पैदा होते ही भूखे थे। वे आकाश में उड़ गये।

मेरु पर्वत पर सब देवता अमृत पाने के लिए बैठक किये। नारायण ने ब्रह्मा से कहा कि देवता-दैत्य मिलकर समुद्र का मंथन करें, तो उसमें से अमृत निकलेगा। देवता-दैत्य मिलकर समुद्र का मंथन किये। उसमें से बहुत वस्तुएं निकलीं, साथ-साथ अमृत भी निकला। भगवान ने मोहिनी रूप बनाकर देवताओं को अमृत पिलाया, दैत्यों को नहीं पिलाया। फिर तो देव-दैत्य में युद्ध हो गया। देवता विजयी हुए।

समुद्र से उच्चैःश्रवा घोड़ा भी निकला था। कद्रू ने विनता से कहा कि घोड़ा किस रंग का है? विनता ने कहा-सफेद। कद्रू ने कहा-घोड़ा का रंग सफेद अवश्य है, परंतु उसकी पूंछ काली है। दोनों में शर्त हुई कि जिसकी बात गलत हो वह दूसरे की दासी बनकर रहे।

जब पता चला कि घोड़ा पूरा सफेद है, तब कद्रू ने छल से काम लेना चाहा जिससे उसे विनता की दासी न बनना पड़े। कद्रू ने अपने पुत्रों से कहा-तुम लोग घोड़ा की पूंछ में काले बाल बनकर लग जाओ जिससे पूंछ काली दिखे। पुत्रों ने कद्रू की बात नहीं मानी, तो कद्रू ने शाप दिया कि तुम सब राजा जनमेजय के यज्ञ में भस्म हो जाओ। इस बात को सुनकर ब्रह्मा प्रसन्न हुए। इधर कद्रू की बात उसके एक पुत्र कर्कोटक ने मान ली। उसने कहा कि मैं घोड़ा की पूंछ में काले बाल बनकर लग जाऊंगा जिससे वह काली दिखेगी। कद्रू प्रसन्न हुई। कर्कोटक ने वही छल किया।

पूंछ काली दिखी, इसलिए विनता कद्रू की दासी बन गयी। एक दिन कद्रू ने कहा-विनता! समुद्र के बीच में नागों का एक रमणीय स्थान है। तू मुझे वहां ले चल। विनता ने कद्रू को अपनी पीठ पर चढ़ाया तथा गरुड ने अपनी पीठ पर

सर्पों को चढ़ाया और ले उड़े। गरुड सूर्य के निकट होकर जा रहे थे। इसलिए सूर्य के ताप से नाग पीड़ित होकर मूर्च्छित हो गये। कद्रू ने इंद्र की स्तुति की, इसलिए इंद्र ने पानी बरसाया और नागों को राहत मिली (अध्याय –)।

गरुड ने अपनी माता विनता से पूछा–माता! क्या कारण है कि मुझे सर्पों की आज्ञा में रहना पड़ता है? विनता ने बताया कि मुझसे कद्रू से शर्त हुई थी, किंतु सर्पों ने मेरी जीती हुई बाजी को पलट दी। गरुड ने सर्पों से पूछा कि मैं आपको क्या दे दूं जिससे मैं और मेरी माता तुम्हारी दासता से मुक्त हो जायं। सर्पों ने कहा–तुम हमारे लिए अमृत ला दो, तो तुम दासता से छूट जाओगे।

गरुड ने कहा–माता विनता! मैं अमृत लाने के लिए जा रहा हूं, किंतु मेरा भोजन क्या होगा? विनता ने कहा कि समुद्र के टापू में निषादों का निवास है। तुम उन्हें खा लेना। गरुड ने यही किया। उन्होंने निषादों को खा लिया। गरुड उड़े तो उनको उनके पिता कश्यप का दर्शन हुआ। गरुड ने कश्यप से पूछा कि निषादों को खा लेने पर भी मेरी भूख नहीं गयी। मैं क्या खाऊं?

कश्यप ने कहा–आगे एक सरोवर है। उसमें एक कछुआ रहता है। वह तीन योजन ऊंचा और दस योजन गोल है। वहां पर एक हाथी नित्य आता है। वह छह योजन ऊंचा और बारह योजन लम्बा है। उन्हीं दोनों को खा लो। ये दोनों पहले जन्म के सगे भाई हैं। ये धन के बंटवारा के लिए परस्पर कलह किये थे सो आज कछुआ और हाथी रूप में हैं। हाथी नित्य कछुआ को पकड़कर खींचकर मारना चाहता है और कछुआ भी हाथी का घमंड नहीं सह पाता है। अतः दोनों नित्य लड़ते हैं। अतएव इन दोनों को तुम खा लो।

गरुड उड़े और वहां उस सरोवर पर जाकर एक पंजे से हाथी को तथा दूसरे पंजे से कछुए को पकड़कर ले उड़े। एक जगह गये वहां एक बड़ा वटवृक्ष था। उसकी एक शाखा जो सौ योजन फैली थी उसी पर बैठकर हाथी और कछुए को खाना चाहा, परंतु उस पर गरुड के बैठते ही वह शाखा टूट गयी। गरुड ने उस शाखा को चोंच में ले लिया, क्योंकि उसमें बालखिल्य ऋषि लोग लटककर तप कर रहे थे। गरुड को लगा कि मैं इस शाखा को छोड़ दूंगा तो ये ऋषि लोगों की जान जायगी। गरुड उड़ते-उड़ते गंधमादन पर्वत पर चले गये। वहां कश्यप जी पुनः मिल गये। उन्होंने बालखिल्य ऋषियों से निवेदन किया, तो वे उस शाखा को छोड़कर तपस्या करने के लिए हिमालय पर चले गये। गरुड उस सौ योजन लंबी शाखा को कहीं निर्जन जगह में छोड़ना चाहते थे जिससे प्राणियों

की क्षति न हो। कश्यप ने उन्हें एक ऐसा विशाल पर्वत बताया जो बर्फ से सब समय ढका रहता था। वहां कोई जीव-जन्तु नहीं रहता था। वह शाखा ऐसी थी कि उसे सौ पशुओं के चमड़े से बनी रस्सी से भी नहीं लपेटा जा सकता था। गरुड उस शाखा को चोंच में और हाथी तथा कछुए को पंजे में लेकर उड़े और शीघ्र एक लाख योजन उड़ गये। वे क्षण भर में उस बर्फ वाले पर्वत पर उस शाखा को डाल दिये। फिर उस पर्वत की एक चोटी पर बैठकर उस कछुए तथा हाथी को खाये।

गरुड खा-पी कर उड़े। उनके भय से इंद्र का **वज्र** जल उठा। इंद्र ने भयभीत होकर बृहस्पति से पूछा-गुरु जी! यह कैसा भयंकर उत्पात है? हम देवताओं के सामने कौन है जो इतना वीर बन रहा है? बृहस्पति ने कहा-ये गरुड आ रहे हैं। ये अमृत का अपहरण करना चाहते हैं। इंद्र भी कम नहीं थे। वे **वज्र** लेकर डट गये (अध्याय -)।

अमृत की रक्षा देवता कर रहे थे। गरुड उन्हें परास्त करके अमृत के घड़े को लेकर उड़ चले। बीच में विष्णु भगवान मिल गये। वे गरुड के प्रयास से संतुष्ट हुए। विष्णु ने गरुड को वर देना चाहा। गरुड ने कहा-मैं आपके ऊपर रहूं और अमृत पीये बिना अजर-अमर रहूं। गरुड ने भगवान विष्णु को वर देना चाहा। विष्णु ने कहा-तुम मेरा वाहन बनो। इसीलिए गरुड विष्णु के वाहन हैं और विष्णु ध्वज पर गरुड की छाप होने से गरुड विष्णु के ऊपर भी हैं।

इंद्र तो गरुड का कुछ नहीं कर पाये। तब वे विनम्र होकर गरुड से मित्रता करना चाहे। गरुड ने कहा-पहले मेरा बल जान लो। संत अपनी बड़ाई अपने मुख से नहीं करते, किंतु किसी मित्र के पूछने पर सच कह भी देते हैं। इंद्र! ध्यान दो पर्वत, वन, समुद्र सहित सारी पृथ्वी तथा आपको भी मैं अपने एक पंख पर रखकर उड़ सकता हूं। संपूर्ण चराचर लोकों को अपने एक पंख पर रखकर मैं बिना परिश्रम के उड़ सकता हूं।

इंद्र ने गरुड के बल को स्वीकारा और कहा कि यदि आपको अमृत की आवश्यकता नहीं है, तो उसे आप मुझे वापस कर दें, अन्यथा इस अमृत को पीकर लोग मुझे कष्ट पहुंचायेंगे। गरुड ने कहा कि एक कारण से मैं अमृत को ले जा रहा हूं। मैं जहां इसे रख दूंगा, वहां से आप इसे उठा लीजिएगा।

इंद्र गरुड की बातों से संतुष्ट हुए और उन्होंने गरुड से कहा कि आप मुझसे कुछ वर मांग लो। गरुड ने कहा-इंद्र! यद्यपि मैं कुछ भी करने में समर्थ हूं, तथापि मैं तुम्हारी इस याचना को स्वीकारता हूं कि अमृत दूसरों को न दिया जाय। स्वयं ही तुमसे मैं वर मांगता हूं कि सर्प मेरे भोजन बनें। इंद्र गरुड को

वर देकर विष्णु भगवान के पास चले गये।

गरुड ने अमृत का कलश लाकर नागों के पास कुशघास पर रख दिया और उनसे कहा कि तुम लोग स्नान करके इसे पीयो। तुमने जो शर्त रखी थी, वह पूरी हुई। अब मेरी माता दासीपन से मुक्त हो गयी। नाग लोग स्नान करने गये, इसी बीच इंद्र अमृत का कलश उठा ले गये।

सर्पजन जब स्नान करके आये तो अमृत नदारद था। परंतु उन्हें संतोष हुआ कि यह हमारे कपटपूर्ण व्यवहार का फल है। हमने विनता को धोखा देकर दासी बनाया था। उसका फल हमें मिल गया। इसके बाद सर्पों ने सोचा कि कुशघास पर अमृत रखा गया था, तो हो सकता है कि इसमें कुछ अमृत लगा हो, अतएव वे उसे चाटने लगे, इसलिए सर्पों की जीभ के दो भाग हो गये। अमृत का कुशघास में स्पर्श होने से कुशघास का नाम 'पवित्री' हो गया। उस दिन से गरुड अपनी माता विनता के साथ प्रसन्न होकर रहने लगे और सर्पों को खाते रहे।

माता कद्रू ने अपने जन्माये सर्पों में से जिन सर्पों ने उनकी आज्ञा नहीं मानी थी, उनको यह शाप दिया था कि तुम जनमेजय के यज्ञ में जल मरोगे। उन सर्पों में से शेषनाग ने अलग जाकर तप किया। ब्रह्माजी प्रसन्न होकर वर देने आये। शेषनाग ने कहा–मेरे सहोदर भाई नाग बड़े दुष्ट हैं। मैं उनके साथ नहीं रहना चाहता। वे सब एक दूसरे का दोष निकालते हैं, इसलिए मैं उनसे ऊबकर तपस्या में लग गया हूं जिससे मैं उन्हें देखूं ही नहीं। वे सब विनता तथा उनके पुत्रों से भी ईर्ष्या रखते हैं। मैं चाहता हूं कि तपस्या करके इस शरीर को छोड़ दूं।

ब्रह्मा ने कहा–मैं तुम्हें काम देता हूं। देखो, यह पृथ्वी सदैव हिलती-डुलती रहती है। तुम इसे अपने सिर पर धारण करके इसे स्थिर कर दो। फिर तो शेष जी ने पृथ्वी को अपने सिर पर धारण कर लिया, इससे वह स्थिर हो गयी। शेष जी तो पृथ्वी को सिर पर धारण करके उसकी सेवा में लग गये, अतएव नागों ने वासुकि नाग को राजगद्दी पर बैठाया (अध्याय –)।

जनमेजय के यज्ञ में सांप जलेंगे, यह सोचकर सांपों के परामर्श से वासुकि नाग ने अपनी बहिन-जरत्कारु को जरत्कारु नाम के ब्राह्मण से ब्याह दिया। उन दोनों से आस्तीक नाम का पुत्र पैदा हुआ जिसने बहुत-से सर्पों को जलने से बचाया (अध्याय –)।

मीमांसा

नाग नाम से मनुष्य थे। वे नाग का गणचिह्न रखते थे, इसलिए नाग या नागवंशी कहलाते थे। कुछ विद्वानों की राय से प्रयागराज का नाम पहले कभी भोगवती था और यह स्थान नागवंशियों का था। आज भी प्रयागराज में गंगा के तट पर वासुकि नाग का पुराना मंदिर है। महाभारत में आया भी है कि गंगा के तट पर नागों के बहुत घर हैं।

आर्यों और नागों में वैमनस्य चलता था। आपस में मारामारी चलती थी। अतएव नागों की राय से वासुकि नाग ने अपनी बहिन–जरत्कारु को ब्राह्मण–जरत्कारु को पत्नी बनाने के लिए दे दिया। इसलिए दोनों वर्गों में नरमी आ गयी।

जरत्कारु जोड़ा से जो आस्तीक नाम का मेधावी पुत्र पैदा हुआ, उसने दोनों वर्गों में समता का स्थापन कराया।

नाग–आर्य–युद्ध की कहानी पुराकाल से चलती रही और वह बदलते–बदलते अनेक रूपों में गाथात्मक परिधान पहनती रही। वैष्णव लेखकों ने गरुड को विष्णु से जोड़कर उसकी बेतहाशा महिमा बढ़ायी। ऊपर गाथा में बिना सिर–पैर की बातें भरी हैं जिन्हें पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि यह सब अतिशयोक्ति तथा असंभव कल्पना है; परंतु इसके अंतराल में पुराकाल की ऐतिहासिक घटना छिपी है जो विचित्र गाथात्मक रूप लेकर चलती आयी है।

. राजा उपरिचर वसु

उनसठ से बासठ (–) अध्याय तक महाभारत का उपक्रम तथा महत्ता बतायी गयी है। इसके बाद कथा शुरू होती है–चेदिदेश में राजा उपरिचर वसु था। वह धर्मवान था। इंद्र ने उस पर प्रसन्न होकर उसे एक मणिजड़ित विमान दिया था जो सदैव आकाश में रहता था और राजा उसी में रहता था, इसीलिए उसका नाम उपरिचर हो गया–ऊपर चलने वाला। इंद्र ने उसको बांस की एक छड़ी दी जिसको जमीन में गाड़कर राजा हर वर्ष उसके माध्यम से इंद्र की पूजा करता था। हर वर्ष समय आने पर राजा बांस की छड़ी जमीन पर

. **बहूनि नागवेश्मानि गंगायास्तीर उत्तरे।**
तत्रस्थानपि संस्तौमि महतः पन्नगानहम् आदि पर्व, ,
अर्थात गंगा के उत्तर तट पर बहुत से नागों के घर हैं। वहां रहने वाले बड़े–बड़े सापों की भी मैं स्तुति करता हूं।

गाड़कर पूजा करता था। इंद्र हंस रूप धारणकर उस छड़ी के उच्च सिरा पर बैठ जाता था। इंद्र से राजा उपरिचर अत्यंत उपकृत था। अतएव राजा उपरिचर वसु हर वर्ष इंद्रोत्सव मनाया करता था।

राजा की राजधानी के समीप शुक्तिमती नदी बहती थी। पास में रहे हुए कोलाहल नामक सचेतन पर्वत ने कामवश उस नदी को रोक लिया। राजा उपरिचर ने पर्वत पर पैर मारा तो पर्वत फट गया और नदी बह चली। उस नदी के गर्भ से एक पुत्र और एक पुत्री पैदा हुए। राजा ने पुत्र को पालकर अपना सेनापति बनाया और पुत्री को पालकर अपनी पत्नी बनाया। उसका नाम रखा गिरिका।

राजा वन में शिकार करने गया। वहां वह वासनावश हो गया और उसने अपना वीर्य एक पत्ते पर उड़ेल दिया और एक पक्षी को दिया कि इसे मेरी रानी के पास पहुंचा दो। वह इससे गर्भवती हो जायेगी। पक्षी ले उड़ा। बीच में दूसरे बाज–पक्षी ने समझा कि यह मांस का टुकड़ा लिए जा रहा है। अतएव उस पर हमला कर दिया। दोनों में मारामारी चली। फलतः राजा का वीर्य यमुना में गिर गया, जिसे एक मछली ने निगल लिया। वह मछली पहले अद्रिका नाम की एक प्रसिद्ध अप्सरा थी। वह ब्रह्मा जी के शाप से मछली हो गयी थी। दस महीने बाद मछुवारे ने उस मछली को जाल में फंसा लिया। जब उसने उसका पेट चीरा तो उसमें से एक कन्या निकली और एक पुरुष निकला। मछली तो अद्रिका अप्सरा बनकर स्वर्ग चली गयी।

मछुवारे ने इन दोनों बच्चों को राजा उपरिचर के पास ले जाकर सब बताया। राजा ने बच्चे को अपने पास रख लिया। यह बच्चा आगे चलकर मत्स्य नाम का राजा हुआ। कन्या को राजा ने मछुवारे के पास ही रख दिया। मछली से पैदा होने से कन्या के शरीर से मछली की गंध आती थी। इसलिए उसको लोग मत्स्यगंधा कहने लगे। किंतु वह सद्‌गुण संपन्न थी। इसलिए उसका सही नाम सत्यवती रखा गया। यही सत्यवती आगे चलकर वेदव्यास की मां बनती है (अध्याय)।

मीमांसा

चेदि देश जबलपुर क्षेत्र है। शुक्तिमती नदी नर्मदा नदी है। वैदिक युग बीतते इंद्र की महिमा समाप्त हो जाती है। राजा उपरिचर द्वारा इंद्र–पूजा वैदिक युग का उड़ा हुआ खंड है जिसे किसी पंडित द्वारा राजा उपरिचर के साथ जमा दिया

गया है। पर्वत का सचेतन होना, कामवश होना और नदी को रोकना और राजा के पद-प्रहार से पर्वत का फट जाना और नदी से लड़का-लड़की पैदा होना असंभव कथन है।

राजा का वीर्य पत्ते पर रखकर पक्षी का ले जाना और यमुना में उसके गिरने तथा मछली के निगल लेने से उसको गर्भ रह जाना और दस महीने में उसके पेट से एक लड़का तथा एक लड़की का पैदा होना बाल कहानी, असंभव कथन तथा अस्वाभाविक है। वस्तुतः मत्स्यगंधा एवं सत्यवती से ही आगे चलकर पैदा होने वाला बच्चा महामहिम वेदव्यास होता है। इसलिए कल्पनाशील पंडितों को उसके चारों तरफ चमत्कार का घटाटोप करना आवश्यक लगा, और सत्यवती को राजा उपरिचर वसु तथा अद्रिका अप्सरा से जोड़ने की बेढंगी कल्पना करना पड़ा। सीधी बात है कि सत्यवती मछुवारे की कन्या थी।

. सत्यवती से वेदव्यास की उत्पत्ति

सत्यवती सुंदरी युवती हुई। पिता के लिए उसका सेवाकार्य था यमुना में नाव चलाना। पराशर मुनि आ गये। उन्हें नाव से यमुना पार करना था। वे नाव में बैठे और सत्यवती पर मोहित हो गये। उन्होंने उससे समागम करने का प्रस्ताव रखा। सत्यवती ने कहा–महाराज! नदी के दोनों तटों पर मनुष्य खड़े हैं। वे हम दोनों को देख रहे हैं। ऐसी अवस्था में समागम कैसे संभव है? इसके अतिरिक्त मैं कुंवारी कन्या हूं। कौमार्य नष्ट होने पर मैं पिता के पास कैसे जाऊंगी?

पराशर ने अपने तपबल से घना कोहरा पैदा कर दिया और कहा कि तुम्हारा कौमार्य सुरक्षित रहेगा और उसके शरीर से सुगंध निकलने का वर दे दिया। सत्यवती योजनगंधा हो गयी। उसके शरीर से निकलने वाली सुगंधी लोगों को एक योजन दूर से मिलती थी। अंततः पराशर ने उसको गर्भवती कर दिया। उसी यमुना-नदी की रेत में उसे बच्चा पैदा हुआ। जिसका रंग काला था। अतएव उसका नाम कृष्ण द्वैपायन हुआ। काला होने से कृष्ण और बालू के द्वीप पर छोड़ दिये जाने के कारण द्वैपायन नाम हुआ। मूल वचन है–बाल्यपन में ही यमुना के द्वीप में छोड़ दिये गये इसलिए वे द्वैपायन नाम से प्रसिद्ध हुए–*न्यस्तो द्वीपे स यद् बालस्तस्माद् द्वैपायनः स्मृतः* (, ,)। वेदव्यास ने चारों वेदों और महाभारत का अध्ययन सुमन्तु, जैमिनि, पैल, पुत्र-शुकदेव और वैशंपायन को कराया।

मीमांसा

पराशर वह काम नहीं कर सके जो संभव था–अपने मन पर नियंत्रण करना, किंतु कोहरा पैदा करना किसी मनुष्य के वश की बात नहीं है, वह कर डाले। वस्तुतः छिपी जगह का आधार लिए होंगे। किसी के आशीर्वाद से शरीर से गंध निकलने वाली नहीं है। गर्भवती होने के बाद उसका कौमार्य कहां रहा? अतएव यह सब असंभव कथन है। सीधी बात है पराशर ने सत्यवती को गर्भवती कर दिया। कोई यह नहीं जानता कि गर्भस्थ बच्चा कैसा होगा। पैदा होकर बढ़ने तथा कार्यक्षेत्र में आने पर मनुष्य का पता लगता है कि इस प्रकार है। चलो, पराशर ने कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास को पैदा कर मानव–जाति को एक रत्न दे दिया।

. मुख्य पात्रों की संक्षिप्त उत्पत्ति–कथा

विदुर धर्मराज के अंश से पैदा हुए, गवल्गण से संजय, कुंती और सूर्य से कर्ण, स्वयं विष्णु का अवतार कृष्ण वसुदेव–देवकी से, भरद्वाज का वीर्य द्रोणी (पात्र) में गिरने से द्रोण पैदा हुए, शरद्वान का वीर्य सरकंडे के समूह पर गिरा और वह दो भागों में बंट गया। उससे कृपी और कृपाचार्य पैदा हुए। कृपी द्रोणाचार्य की पत्नी तथा अश्वत्थामा की मां हुई। यज्ञवेदी से द्रौपदी उत्पन्न हुई। युधिष्ठिर धर्म से, भीम वायु से, अर्जुन इंद्र से, नकुल और सहदेव अश्विनीकुमारों से पैदा हुए इत्यादि।

मीमांसा

ऊपर प्रकृति–विरुद्ध अस्वाभाविक उत्पत्ति की कल्पना तो है ही, अवतारवाद की छौंक भी है। इस प्रकार यह तिरसठवां अध्याय पूरा हुआ।

. ब्राह्मणों से क्षत्रियों की उत्पत्ति

चौसठवें अध्याय के शुरू ही में बताया गया कि परशुराम द्वारा क्षत्रियों का इक्कीस बार विनाश होने से उनकी पत्नियां ब्राह्मणों से गर्भाधान करा कर बच्चे पैदा करती रहीं और क्षत्रियों का विस्तार होता रहा। वे धर्मपूर्वक राज्य करने लगे। किंतु कुछ दिनों में राजपत्नियों से असुरों का जन्म शुरू हो गया। वे वेद, ब्राह्मण और धर्म के विरोधी बनकर अहंकार से प्रजा का हनन करने लगे। पृथ्वी व्याकुल हो गयी। वह ब्रह्मा जी की शरण में गयी। ब्रह्मा जी ने पृथ्वी को

सांत्वना देकर विदा कर दिया और देवताओं से कहा कि तुम लोग पृथ्वी पर अपना अंशावतार लेकर उसका उद्धार करो। इंद्र ने भगवान पुरुषोत्तम के पास जाकर कहा कि आप पृथ्वी का भार उतारने के लिए स्वयं अंशावतार ग्रहण करें। हरि ने तथास्तु कहकर अपनी स्वीकृति दे दी। इन सब बातों का विस्तार किया गया है और आगे वें अध्याय तक अनेकों के उत्पन्न होने की बातें कही गयी हैं।

मीमांसा

भारत विशेषज्ञ श्री वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"अंशावतार पर्व के शेष भाग में कुरु–पांडव वीरों के और उनके समकालीन अनेक राजाओं के जन्मों का उल्लेख है। इस सारे प्रकरण की कल्पना अवतारवाद के सिद्धांत को मानकर हुई है। कौन किसका अवतार है, यही इस वर्णन में ढूंढ़–ढूंढ़ कर बताया गया है। यह प्रकरण पांचरात्रों द्वारा अवतारवाद की कल्पना परिपक्व होने पर जोड़ा गया प्रतीत होता है।...अवश्य ही यह कल्पना वैदिक या ब्राह्मण साहित्य का अंग नहीं थी।"

. राजा दुष्यंत और शकुंतला

दुष्यंत नाम के एक प्रतापवान राजा हुए हैं। वे वन में शिकार करने गये। विविध जानवरों को मारने के बाद आगे एक वन प्रदेश में उन्होंने कश्यपगोत्रिय महर्षि कण्व का आश्रम देखा। उन्होंने अपने साथियों को कुछ दूर रोककर आश्रम में प्रवेश किया। आश्रम सूना था। उन्होंने पुकारा–यहां कौन है? एक सुंदरी युवती भीतर से निकली। उसने कहा–कहिए! आपकी क्या सेवा की जाय? दुष्यंत ने कहा कि मैं राजा इलिल का पुत्र राजा दुष्यंत हूं। कृपया बतायें कि महर्षि कण्व कहां गये हैं? शकुंतला ने बताया–मेरे पिता फल लेने बाहर गये हैं। दो घड़ी प्रतीक्षा कीजिए, तब वे मिलेंगे।

दुष्यंत ने कहा–मैं पूरवंश में उत्पन्न क्षत्रिय राजा हूं। मैं तुम्हारे ऊपर मोहित हूं। तुम मेरी पत्नी बनो। शकुंतला ने कहा–मैं महर्षि कण्व की पुत्री हूं। मैं उनके अधीन हूं। आप उन्हीं के सामने अपनी मांग प्रस्तुत कीजिए। दुष्यंत ने कहा–कण्व ऋषि तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं, उनकी पुत्री तुम कैसे हो सकती हो?

. भारत सावित्री, पृष्ठ – , सस्ता साहित्य मंडल, ई.।

शकुंतला ने कहा–मैं जो अपने पिता जी महर्षि कण्व से सुनी हूं, वह बता रही हूं–एक बार एक ऋषि आये। उन्होंने पिता जी से पूछा–आप तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं, यह शकुंतला कहां से आ गयी? पिता जी ने कहा–विश्वामित्र तप कर रहे थे। इंद्र उनके तप से घबरा गये। उनको डर हुआ कि विश्वामित्र अपने तप के प्रभाव से मेरा इंद्रासन न छीन लें। अतएव उन्होंने मेनका अप्सरा को विश्वामित्र का तप भंग करने के लिए भेजा। विश्वामित्र मेनका में मोहित होकर उसको गर्भवती कर दिये। मेनका हिमालय के शिखर पर मालिनी के तट पर बच्चा पैदा कर और उसे वहीं छोड़कर स्वयं स्वर्ग चली गयी। उस निर्जन स्थल पर शकुंतों (पक्षियों) ने उस बच्चे की रक्षा की। उसी समय मैं वहां स्नान करने के लिए गया, तो शिशु को अनाथ देखकर उठा लाया और उसे पाला–पोषा। वही यह शकुंतला है। इसको मैं अपनी पुत्री मानता हूं। जन्मदाता, अभयदाता और अन्नदाता–तीनों पिता माने जाते हैं।

शकुंतला ने कहा–मैं अपने जन्मदाता पिता को जानती नहीं, कण्व को ही पिता मानती हूं।

दुष्यंत शकुंतला में अत्यधिक मोहित हो गये और उन्होंने शकुंतला से कहा–तुम मेरी महारानी बन जाओ और मेरा सारा राज्य तुम्हारा हो जाय।

शकुंतला ने कहा–पिता जी को आने दीजिए। वे ही मुझे आपको समर्पित करेंगे, किंतु दुष्यंत अत्यंत मोहित थे। वे बारंबार शकुंतला को समझाने लगे। शकुंतला ने कहा–मेरी एक शर्त है। आपके द्वारा जो मुझे बच्चा पैदा हो, वह आपकी राजगद्दी का अधिकारी हो। राजा दुष्यंत बिना सोचे-विचारे उक्त शर्त को स्वीकार लिए।

अंततः दुष्यंत ने शकुंतला को गर्भवती कर दिया और उससे कहा कि मैं बहुत जल्दी तुम्हें अपने राजभवन में बुला लूंगा। दुष्यंत तो चले गये। शकुंतला को चिंता हुई कि पता नहीं, पिता जी मुझे क्या कहेंगे! कण्व आश्रम पर आये। शकुंतला लज्जा-वश थी। वह पिता के स्वागत में पहले के समान नहीं जा सकी।

महर्षि कण्व बात समझ गये। उन्होंने शकुंतला से कहा–भद्रे! तुमने जो आज मेरी अवहेलना करके किसी पुरुष से समागम किया है, उससे तुम्हारे धर्म का नाश नहीं हुआ है। स्त्री-पुरुष यदि एक-दूसरे को चाहते हों, तो उन दोनों का मंत्रहीन समागम गंधर्व विवाह कहलाता है। यह क्षत्रिय के लिए मान्य है। मैं राजा दुष्यंत और तुम पर प्रसन्न हूं, तुम दोनों का भला हो (अध्याय –)।

मीमांसा

उक्त घटना जब घटी है, स्त्री-पुरुष के लिए बड़ा खुला जमाना था। आज इस वैज्ञानिक युग में पुनः वह जमाना लौटता हुआ दिखता है। दुष्यंत द्वारा शकुंतला को जो बच्चा पैदा हुआ, वह भरत है। वही राजगद्दी पर बैठा। उसी के नाम से यह देश तब से भारत कहलाने लगा है और उसी के नाम से कौरव वंश भरतवंश कहा जाता है।

कण्व ऋषि ने शकुंतला को नवजात शिशु रूप में नदी तट पर पड़ी हुई पाया। उस अपरिचित वंश की लड़की से ही भरत का जन्म होता है जो आगे चलकर महामहिम सम्राट हुआ। पंडितों को चिंता हुई कि शकुंतला का जन्म महर्षि और स्वर्गस्थ अप्सरा से जोड़ा जाय, तो विश्वामित्र, इंद्र और मेनका को ला घसीटा गया।

इंद्र वैदिक काल का प्राकृतिक देवता है। वह कोई व्यक्ति नहीं है और न उसका कोई इंद्रलोक है। किसी की तपस्या से घबराने वाला कोई इंद्र नहीं है। वंश की झूठी बात को सिद्ध करने के लिए महर्षि विश्वामित्र का चरित्र हनन कर दिया गया है। और बात तो मजे की यह है कि विश्वामित्र श्रीराम के काल में हैं और कौरव वंश काल में भी हैं। वेद के ऋषि सौ वर्ष जीने की कामना करते हैं और वही सच्चाई है। अतएव सैकड़ों, हजारों और लाखों वर्ष तक जीते रहने की बात कहना मानव-समाज को अज्ञान अंधकार में ढकेलना है जो पौराणिकों का पेशा है। अतएव सच्चाई यह है कि शकुंतला अपरिचित मां-बाप की पुत्री है। वह राजा दुष्यंत की पत्नी बनी। उसका पुत्र भरत है जिससे भारत देश उजागर है। किसी नर या नारी के मूल्यांकन के मापदंड माता-पिता तथा काल्पनिक कुल-गोत्र नहीं हैं, अपितु व्यक्ति के अपने आचरण और ज्ञान हैं। कोई भी महान हो सकता है।

. भरत-जन्म, दुष्यंत-शकुंतला संवाद

शकुंतला को समय से पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम भरत रखा गया। वह बढ़ने लगा। भरत छह वर्ष की अवस्था ही में वन से भैंसों, वराहों, हाथियों और सिंहों को पकड़ लाता और आश्रम के पास के वृक्षों में बांध देता। यह देखकर ऋषियों ने इस बालक का नाम रखा 'सर्वदमन।' ऋषि कण्व ने शकुंतला से कहा कि अब यह युवराज पद पर प्रतिष्ठित होने योग्य हो गया है। ऋषि ने अपने शिष्यों से कहा-तुम लोग शकुंतला को उसके बच्चे सहित उसके पति के

घर पहुंचा दो। शिष्यगण शकुंतला तथा उसके पुत्र को लेकर राजा दुष्यंत के यहां आये।

शकुंतला ने पुत्र को आगे कर राजा दुष्यंत के सामने खड़ी हुई और उनसे कहा–"राजन! आपने महर्षि कण्व के आश्रम में पहुंचकर जिस प्रतिज्ञा के आधार पर मेरा समागम किया था, वह समय आ गया है। यह आपका पुत्र है। अब इसे युवराज-पद पर अभिषिक्त करें।" राजा दुष्यंत ने यह बात सुनकर सारी बातें स्मरण में होते हुए भी शकुंतला से कहा–"दुष्टा तपस्विनि! यह सब मुझे कुछ भी याद नहीं है। तुम किसकी पत्नी हो?" तुम जहां चाहो जाओ।

शकुंतला यह कठोर तथा असत्य वचन सुनकर लज्जित और अचेत-सी होकर स्तंभ की तरह खड़ी रह गयी। वह क्रोध से तमतमा गयी। फिर भी उसने अपने को संभाला और फिर स्थिर होकर बोली–"यह आपका हृदय ही जानता होगा कि क्या सत्य है और क्या असत्य है। उसी को साक्षी बनाकर सही-सही बात कहिए जिससे आपका कल्याण हो। अपने आत्मा का तिरस्कार न कीजिए। जो अपनी सच्चाई को छिपाकर अपने को कुछ अन्य प्रदर्शित करता है, आत्मा का अपहरण करने वाले उस चोर ने कौन-सा पाप नहीं किया? आप समझते हैं कि मैं उस समय अकेली थी, परंतु आप यह नहीं समझते कि हृदय में अविनाशी मुनि अंतरात्मा बैठा है। वह पाप-पुण्य को जानता है और आप उसी के पास रहकर कुटिलता कर रहे हैं।"

"आप किस हेतु भरी सभा में मेरा अपमान कर रहे हैं? मैं शून्य वन में नहीं कह रही हूं। पति पत्नी के गर्भ में जाकर पुत्र रूप में जन्म लेता है, यही जन्म देने वाली जाया का जायत्व है। ऋषि भी स्त्री के बिना पुत्र नहीं पैदा कर सकते। चींटियां भी अपने अंडे को न फोड़कर उनका पालन करती हैं।"

. **सोऽथ श्रुत्वैव तद् वाक्यं तस्या राजा स्मरन्नपि।**
अब्रवीन्न स्मरामीति कस्य त्वं दुष्टतापसि , ,

. **अत्र ते हृदयं वेद सत्यस्यैवानृतस्य च।**
कल्याणं वद साक्ष्येण माऽऽत्मानमवमन्यथाः
योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते।
किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा
एकोऽहमस्मीति च मन्यसे त्वं न हृच्छयं वेत्सि मुनिं पुराणम् ।
यो वेदिता कर्मणः पापकस्य तस्यान्तिके त्वं वृजिनं करोषि

(, , - -

शकुंतला ने बहुत कुछ कहा और अंत में कहा कि आप मुझे त्यागते हैं तो मैं पिता जी के आश्रम पर लौट जाऊंगी, परंतु आपको इस अपने बालक का त्याग नहीं करना चाहिए।

दुष्यंत ने कहा–"शकुंतला! मैं तुम्हें नहीं जानता। मैं तुम्हारे इस पुत्र को भी नहीं जानता। स्त्रियां झूठ बोलने वाली होती हैं। तुम्हारी बात पर विश्वास कौन करेगा? तुम्हारा बालक बहुत लंबा है। यह बहुत बलवान दिखता है। यह थोड़े समय में साखू के खंभे जैसा इतना लंबा कैसे हो गया? तुम्हारी जाति नीच है। तुम कपट-सी बात करती हो। तुमने जो कुछ कहा है, मैं नहीं जानता। मैं तुम्हें नहीं पहचानता। तुम्हारी जहां इच्छा हो जाओ।"

पंडित ने शकुंतला को स्वर्गीय मेनका की पुत्री लिख दी है, तो उससे उसे अतिशयोक्ति करवाना भी सरल था! शकुंतला ने कहा–मैं स्वर्गीय मेनका की पुत्री हूं, इसलिए मैं आकाश में उड़ सकती हूं और सर्व लोकों में जा सकती हूं, और आप केवल पृथ्वी पर रेंगने वाले मनुष्य हैं। अतएव मैं सुमेरु पर्वत बराबर ऊंची हूं, आप कण बराबर छोटे। अंत में बड़ी बाताकुही और किचकिच के बाद आकाशवाणी हुई कि हे दुष्यंत! शकुंतला तुम्हारी पत्नी है और इसके पेट से पैदा हुआ बालक तुम्हारा पुत्र है। इसको ग्रहण करो। यह बालक भरत नाम से प्रसिद्ध होगा।

दुष्यंत ने प्रसन्न होकर पुरोहितों और मंत्रियों से कहा कि आप लोग देवदूत की आकाशवाणी पूर्णतया सुने। मैं भरत को अपना पुत्र रूप जानता हूं। यदि केवल शकुंतला के कहने से मैं इसे रख लेता तो सबका संदेह बना रहता। यह बालक शुद्ध नहीं माना जाता। दुष्यंत ने शकुंतला से भी क्षमा मांगी। इसके बाद शकुंतला और भरत को लेकर वे अपनी माता रथंतर्या के पास गये और इन दोनों का परिचय दिया। माता ने पुत्रवधू और पौत्र भरत को प्यार दिया। फिर भरत राजगद्दी पर बैठे और दुष्यंत कुछ दिनों में स्वर्गवासी हो गये (अध्याय)।

मीमांसा

भरत का अपनी छह वर्ष की अवस्था में सिंह आदि को पकड़कर बांधना अतिशयोक्ति है। महाकाव्यों और पुराणों के लेखकों को अतिशयोक्ति करने में हिचक नहीं होती। इसलिए पाठक इनके कथन से सावधान रहें।

पुरुष सदैव ही लंपट बनकर नारियों के साथ अत्याचार किया है। नारियां गर्भवती होकर अपना सिर छिपाने लायक नहीं रहतीं और पुरुष छाती फुलाकर

समाज में अपना दंभ दिखाता रहता है। दुष्यंत की झुठाई पर शकुंतला का करारा तमाचा है। फिर भी दुष्यंत अपने अंतरात्मा को भरी सभा में छलते रहे। न कोई आकाश में उड़ सकता है और न आकाशवाणी होती है। यह सब प्रकृति–विरुद्ध बातें मनुष्य में अज्ञान बढ़ाने वाली हैं। इसलिए पाठक पारखी बनकर छान–बीन की दृष्टि अपनावें। शकुंतला और भरत पवित्र हैं। शकुंतला के माता–पिता का पता न होने से उसकी ऊंचाई में कोई कमी नहीं है। उसको उच्च सिद्ध करने के लिए मेनका और विश्वामित्र को घसीटना हीन भावना, घृणित वर्णवादी विचार और मनुष्यता को न समझना है।

. ययाति की संक्षिप्त कथा

राजा नहुष के पुत्र ययाति हुए। उनकी दो पत्नियां थीं, दैत्य–गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी और दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा। देवयानी के दो पुत्र थे–यदु और तुर्वसु और शर्मिष्ठा के तीन पुत्र थे–द्रुह्यु, अनु और पूरु।

राजा ययाति वृद्ध हो गये, परंतु उनकी भोग–कामना प्रबल थी। उन्होंने अपने पांचों पुत्रों से कहा कि तुम लोगों में से कोई मेरा बुढ़ापा ले लो और अपनी जवानी मुझे दे दो। परंतु चार पुत्रों ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। अंतिम पांचवां पूरु ने पिता की आज्ञा मान ली और अपनी जवानी पिता को देकर उनका बुढ़ापा स्वयं ले लिया। राजा ययाति पूरु पर प्रसन्न होकर उसको राजगद्दी दे दी और स्वयं नवजवान होकर युवतियों के बीच में डूब गये। राजा ययाति एक हजार वर्ष तक जवान रहे और भोगों में डूबे रहे, परंतु उनकी भोग–इच्छा पूरी नहीं हुई, अपितु तृष्णा बढ़ती गयी और वे अशांत हो गये। तब राजा ने यह गाथा कही–"भोगों को भोगने से कामना कभी शांत नहीं होती जैसे घी डालने पर आग अधिक बढ़ती है। सारी पृथ्वी, रत्न, पशु, स्त्रियां किसी एक मनुष्य को मिल जायं, तब भी उसको संतोष न मिलेगा। वह और अधिक पाना चाहेगा। इसलिए भोगों की इच्छा का त्याग करो। जब मनुष्य मन, वाणी और इंद्रियों से किसी प्राणी को कष्ट नहीं देता तब वह ब्रह्म हो जाता है। जब मनुष्य न किसी से डरता है, न किसी को डराता है, न किसी वस्तु की इच्छा करता है और न किसी से द्वेष करता है, तब वह ब्रह्म ही है।"

राजा ने इस प्रकार विचारकर पूरु से अपना बुढ़ापा लेकर उसकी जवानी उसे दे दी और स्वयं तपस्या में लग गये। राजा ययाति से दैत्य–पुत्री शर्मिष्ठा से उत्पन्न पुत्र पूरु राजगद्दी पर रहा और उससे पूरु–वंश चला जो पौरव–वंश कहलाया (अध्याय)।

मीमांसा

जवानी-बुढ़ापा की अदला-बदली असंभव है। पूरा जीवन सौ वर्ष के भीतर होता है, कोई-कोई सौ से ऊपर जाते हैं। कई सौ या हजार वर्ष कोई नहीं जीता। वस्तुतः भोगों की निस्सारता बताने के लिए राजा ययाति के जीवन में जवानी-बुढ़ापा की अदला-बदली की कल्पना तथा हजार वर्ष भोगों को भोगने की कल्पना चिपकायी गयी है। ध्यान रहे, पौरव-वंश की मां दैत्यराज विषपर्वा की पुत्री है।

. कच और देवयानी

एक बार राज-ऐश्वर्य को लेकर देवता और दैत्यों में भयंकर संघर्ष हुआ। देवताओं के पुरोहित बृहस्पति थे और दैत्यों के शुक्राचार्य। इन दोनों ब्राह्मणों में सदैव लागडांट बनी रहती थी। युद्ध में देवता मारे जाते। उन्हें बृहस्पति जीवित नहीं कर पाते थे, किंतु मरे हुए दैत्यों को शुक्राचार्य जीवित कर देते, क्योंकि उनके पास संजीवनी विद्या थी। यह विद्या देव-गुरु बृहस्पति के पास नहीं थी।

दुखी देवता बृहस्पति के पुत्र कच से निवेदन किये कि शुक्राचार्य के पास संजीवनी विद्या है। उसे तुम सीखकर आओ और हम देवताओं की जान बचाओ। शुक्राचार्य दैत्यराज वृषपर्वा के राजदरबार में मिलेंगे।

कच वृषपर्वा दैत्य के राजदरबार में जाकर शुक्राचार्य से मिले और उनका शिष्य होकर उनसे विद्या सीखने के लिए निवेदन किये। शुक्राचार्य कच को प्यार से अपने पास रखकर उनको शिक्षा देने लगे। कच गुरु-शुक्राचार्य और उनकी पुत्री देवयानी की सेवा करते, उन्हें प्रसन्न रखते थे। कच नवजवान थे, नवजवानी में प्रिय लगने वाले कार्य गायन, वादन और नृत्य में निपुण थे। इन सबसे कच देवयानी को प्रसन्न रखते थे। देवयानी भी गाती, आमोद-प्रमोद करती और कच की सेवा करती थी। ऐसा करते हुए पांच सौ वर्ष बीत गये। एक दिन कच शुक्राचार्य की गायों को वन में चरा रहा था। दैत्यों ने बृहस्पति के द्वेषवश और अपनी संजीवनी विद्या की सुरक्षा की दृष्टि से कच को मार डाला और उसकी लाश को टुकड़े-टुकड़े करके कुत्तों तथा सियारों को खिला दिया। शुक्राचार्य जब यह सब जान पाये तब उन्होंने अपनी संजीवनी विद्या से कच को जिला दिया। उसके अंग-अंग कुत्तों-सियारों के पेट फाड़-फाड़ कर निकल आये और कच ह्रष्ट-पुष्ट और सुंदर रूप में उपस्थित हो गया।

एक बार देवयानी ने कच को फूल लाने के लिए वन में भेजा। दैत्यों ने अबकी बार कच का शरीर पीस कर समुद्र में घोल दिया। पता चलने पर

शुक्राचार्य ने अपनी संजीवनी विद्या से पुनः उसे जीवित कर दिया।

कुछ दिनों के बाद देवयानी ने पुनः कच को फूल लाने के लिए वन में भेजा। अबकी बार दैत्यों ने कच को मारकर जला दिया और उसकी राख शराब में मिलाकर शुक्राचार्य को पिला दिया। बहुत विलंब होने पर देवयानी घबरायी और उसने पिता शुक्राचार्य से कहा कि मालूम होता है, पुनः दैत्यों ने कच को मार डाला।

देवयानी बिलखकर रोने लगी। शुक्राचार्य ने समझाया कि यदि किसी प्रकार कच पुनः जी जाय तो दैत्य पुनः उसे मार देंगे। अतएव तुम अब उसकी चिंता छोड़ दो। देवयानी ने कहा कि मैं उसके बिना जी नहीं सकती। शुक्राचार्य विवश होकर विद्या का प्रयोग करके कच को बुलाया, तब उनके पेट में बैठा हुआ कच भयभीत होकर बोला–भगवन! आप मुझ पर प्रसन्न हों। मैं आपके पेट में हूं। शुक्राचार्य ने कहा–बेटा, तुम किस मार्ग से मेरे पेट में गये? कच ने बता दिया कि दैत्यों ने मेरे शरीर को जलाकर उसकी राख शराब में घोलकर उसे आपको पिला दिया है।

शुक्राचार्य ने देवयानी से कहा कि अब यदि कच मेरे पेट से निकलकर जीवित बचता है तो मेरा पेट फटने से मैं मर जाऊंगा। देवयानी दोनों का जीवन चाहती थी।

शुक्राचार्य ने कहा–पुत्र कच! तुम सिद्ध हो गये, क्योंकि तुम देवयानी के भक्त हो गये हो और तुम्हें वह चाहती है। मुझसे मृत संजीवनी ग्रहण करो। केवल ब्राह्मण छोड़कर कोई दूसरा नहीं है कि मेरे पेट से निकल सके। तुम मेरे पेट से निकल आओ, और इस विद्या से तुम मुझे जिला देना।

जैसे पूर्णमासी का चंद्रमा प्रकट हो, वैसे कच शुक्राचार्य का पेट फाड़कर निकल आया और उसने शुक्राचार्य को जिला दिया। फिर गुरु शुक्राचार्य को प्रणाम कर कच बोला–मैं विद्याहीन था। मेरे गुरु शुक्राचार्य ने मेरे दोनों कानों में मृतसंजीवनी विद्या रूपी अमृत डाली है। इसी प्रकार कोई ज्ञानी मेरे कानों में विद्या रूपी अमृत डालेगा, उसको मैं अपना माता-पिता मानूंगा। अतएव गुरुदेव के किये हुए उपकार को शिष्य स्मरण रखे, और उनसे कभी द्रोह न करे।

मदिरा पीने से शुक्राचार्य धोखा खाये थे। इसलिए उन्होंने घोषणा की कि आज से अब कोई ब्राह्मण शराब न पिये। कच एक हजार वर्ष शुक्राचार्य के पास रहकर घर लौटना चाहा। देवयानी ने कच से अपना विवाह संबंध जोड़ना चाहा। कच ने कहा कि आप मेरी गुरु-पुत्री हो, मेरी पूज्या हो, मैं आपको अपनी पत्नी नहीं बना सकता। देवयानी ने कहा कि यदि मुझसे विवाह नहीं

करते हो तो तुम्हारी विद्या सफल नहीं होगी। कच ने कहा कि मैं यह विद्या दूसरे को सिखा दूंगा, उसकी तो सफल ही होगी। मुझ पर कृपा रखना। कभी-कभी मेरी याद कर लेना। गुरु जी की सेवा करना। अब मैं चला। ऐसा कहकर कच इंद्रलोक चला गया। देवता लोग सफल मनोरथ होकर उसकी प्रशंसा करने लगे (अध्याय -)।

मीमांसा

अपने पिता बृहस्पति के विरोधी गुरु शुक्राचार्य के पास जाकर सेवापूर्वक विद्या ग्रहण करने का कच का साहस, शुक्राचार्य का कच को प्यार से रखकर उसको विद्या देना, कच का देवयानी से गुरुपुत्री भाव से ही शुद्ध प्रेम रखना, उसके विवाह-प्रस्ताव को निर्भयता और निर्ममतापूर्वक अस्वीकार कर सकुशल लौट आना; यह सब इस कथा का प्रेरक तत्त्व है। कच का संयम अत्यंत जाज्वल्यमान आदर्श है।

मृतसंजीवनी विद्या न कभी थी, न है, जिसके प्रयोग से मरा हुआ व्यक्ति जी जाय। एक बार मर जाने पर उसे कोई नहीं जिला सकता। कच की देह का टुकड़े-टुकड़े होकर, समुद्र में घुलकर तथा राख होकर जी जाना, शुक्राचार्य के पेट से निकल आना, पांच सौ या हजार वर्ष गुरुकुल में रहना आदि घोर अतिशयोक्तियां एवं असंभवकथन पुराणवादी पंडितों की सिरफिरी बातें हैं। देवता-दैत्य नाम से सब मनुष्य थे। देवलोक-इंद्रलोक इस पृथ्वी से कहीं अलग नहीं हैं।

. देवयानी तथा शर्मिष्ठा का कलह

देवयानी शुक्राचार्य की पुत्री थी और शर्मिष्ठा दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री थी। शुक्राचार्य दैत्यराज वृषपर्वा के पुरोहित थे। देवयानी तथा शर्मिष्ठा सरोवर में से स्नान करके निकलीं। हवा के झोंके से दोनों के कपड़े घुल-मिल गये थे। उस समिश्रण में भूल से शर्मिष्ठा ने देवयानी के कपड़े ले लिए। देवयानी ने क्रोध से तमतमाकर शर्मिष्ठा से कहा-अरे, दैत्य की बेटी! तू मेरी शिष्या होकर मेरे कपड़े कैसे ले रही है? तेरा कल्याण न होगा।

शर्मिष्ठा का अहंकार जग गया। उसने कहा-अरे देवयानी! मेरे पिता वृषपर्वा बैठे हों या लेटे, तुम्हारे पिता शुक्राचार्य विनम्र होकर सेवक के समान उनकी वंदना करते हैं। तू भिखारी की बेटी है। तेरा पिता मेरे पिता की स्तुति

करता है और उनसे दान लेता है। मेरे पिता किसी से दान नहीं लेते हैं। ऐ भिक्षुकी! तू छाती पीटकर रो या धूल में लोटकर दुख भोग। मुझसे तेरे द्रोह तथा क्रोध करने से मुझे परवाह नहीं है। भिखमंगिन! तू खाली हाथ है, किंतु मेरे पास अस्त्र-शस्त्र हैं। यदि लड़ना चाहे तो लड़ ले। मैं तुझे कुछ नहीं समझती।

देवयानी क्रुद्ध होकर अपने वस्त्र शर्मिष्ठा की देह से खींचने लगी। ऐसा देखकर शर्मिष्ठा ने देवयानी को कुएं में ढकेल दिया। यह मर गयी होगी, ऐसा समझकर शर्मिष्ठा राजभवन में चली आयी।

राजा ययाति शिकार के लिए वन में घूम रहे थे। वे प्यासे और थके थे। कुएं के पास आये। उन्होंने देखा कि इस कुएं में एक सुंदरी युवती पड़ी है। कुआं घास से ढका था। उसमें पानी नहीं था। देवयानी ने अपना परिचय दिया कि मैं शुक्राचार्य की पुत्री हूं। ययाति ने अपना परिचय दिया कि मैं राजा नहुष का पुत्र राजा ययाति हूं। ययाति ने देवयानी का दाहिना हाथ पकड़कर कुएं से निकाल लिया और कहा कि अब तुम निर्भय होकर अपने घर जाओ। देवयानी ने कहा कि आपने मेरा दाहिना हाथ पकड़ा है और जीवन दान दिया है, इसलिए आप मेरे प्रियतम हो, मुझे अपने घर ले चलो। आप मेरे पति हो गये।

ययाति ने कहा कि तुम ब्राह्मण-पुत्री हो, मैं क्षत्रिय हूं। मुझे गुरु शुक्राचार्य से भी भय लगता है। मैं तुम्हें अपनी पत्नी बनाने का साहस नहीं कर सकता। देवयानी ने कहा कि जब मेरे पिता मुझे तुम्हारे लिए समर्पित करेंगे, तब तो तुम अवश्य मुझे अपनाओगे।

देवयानी एक वृक्ष के नीचे रोती हुई खड़ी रही। उसकी धाय सेविका शुक्राचार्य की आज्ञा से देवयानी को खोजती हुई वहां आयी। देवयानी ने धाय से कहा–घूर्णिके! शीघ्र जाकर पिता जी से कह दे कि अब मैं वृषपर्वा के नगर में पैर नहीं रखूंगी।

घूर्णिका दौड़ी-दौड़ी वृषपर्वा के राजभवन में गयी जहां शुक्राचार्य विद्यमान थे। उसने सब हाल कह सुनाया और बताया कि शर्मिष्ठा ने देवयानी को मृतप्राय करके वन में छोड़ दिया है। शुक्राचार्य दौड़े। वन में खोजकर देवयानी से मिले। उन्होंने उसे दोनों हाथों से उठाकर सीने से लगा लिया और दुखी होकर कहा–बेटी, सब प्राणी अपने ही शुभाशुभ कर्मों के परिणाम में सुख-दुख पाते हैं। लगता है कि तुमसे कुछ अशुभ कर्म हो गया है।

देवयानी ने कहा–पिता जी, वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा कहती है कि आप भाट की तरह वृषपर्वा का गुणगायन करने वाले हैं। उसने मुझसे कहा कि तुम्हारे पिता शुक्राचार्य मेरे पिता वृषपर्वा की भीख पर जीने वाले हैं। मेरे पिता

देते हैं, परंतु किसी से अधेला भी नहीं लेते हैं। उसने मुझे तिरस्कारपूर्वक कुएं में ढकेल दिया।

शुक्राचार्य ने कहा कि मैं किसी के टुकड़े पर जीने वाला भाट नहीं हूं, अपितु मेरी ही लोग स्तुति करते हैं। निर्द्वन्द्व अचिंत्य ब्रह्म ही मेरा बल है। मैं ही सब लोगों का स्वामी हूं। मैं ही जगत जीवों के हित के लिए पानी बरसाता हूं और वनस्पतियों का पोषण करता हूं–"जो उठे हुए क्रोध को घोड़े को वश में करने के समान जीत लेता है, वही संतों द्वारा सच्चा सारथि कहा जाता है। जो केवल लगाम पकड़कर लटका रहता है, वह सारथि नहीं है। जो अपने उठे हुए क्रोध को क्षमा से जीत लेता है वह विश्वविजयी है। जो क्रोध को रोक लेता है, निंदा सह लेता है, दूसरों द्वारा सताये जाने पर दुखी नहीं होता, वह शांति पाता है। सौ वर्षों तक यज्ञ करने वालों से वह श्रेष्ठ है जो अपने क्रोध को मार लेता है। कलह करने वाले अबोधियों की तरह समझदार नहीं करते। वे क्षमाभाव से रहते हैं।"

देवयानी ने कहा–पिता जी! आपकी बातें ठीक हैं, परंतु अब इन मंद बुद्धि दानवों के बीच में रहना ठीक नहीं है। देवयानी की उत्तेजना से उत्तेजित होकर शुक्राचार्य वृषपर्वा के पास पहुंचकर बिना कुछ सोचे-विचारे उनसे कहने लगे–कच ब्राह्मण मेरे घर में रहकर मेरी सेवा करता था, परंतु तूने उसे बारंबार मरवाया। तुम्हारी पुत्री शर्मिष्ठा ने मेरी पुत्री देवयानी को मार डालने के लिए उसे कुएं में ढकेल दिया। इन दोनों कारणों से अब मैं तुम्हें त्याग दूंगा। अब मैं तुम्हारे राज्य में एक क्षण भी नहीं रुक सकता। वृषपर्वा ने कहा–भृगुनंदन! आप पर मैंने कभी किसी प्रकार का दोषारोपण नहीं किया है। यदि आप मुझे छोड़ देंगे, तो मानो हम समुद्र में डूब गये। मेरा जो कुछ है सब आपका है। शुक्राचार्य ने कहा–तो तुम देवयानी को प्रसन्न करो।

अंततः देवयानी के हठ से यह तय हुआ कि शर्मिष्ठा देवयानी के पास दासी बनकर रहे और जब देवयानी का विवाह हो तो शर्मिष्ठा वहां भी जाकर उसका दासातन करे। इतना ही नहीं, शर्मिष्ठा के साथ एक हजार दासियां भी रहकर देवयानी की सेवा करें। यही हुआ।

एक दिन देवयानी शर्मिष्ठा को लेकर वन में विहार करने गयी। वहां राजा ययाति पुनः शिकार के लिए आये थे। देवयानी ने पुनः राजा से अपना पाणिग्रहण प्रस्ताव रखा। ययाति ने मना किया। देवयानी ने अपनी सेविका भेज कर पिता शुक्राचार्य को बुला लिया और उनकी प्रसन्नता से वन में ही देवयानी तथा राजा ययाति का विवाह हो गया। शुक्राचार्य ने राजा ययाति को सावधान

किया कि देवयानी तुम्हारी पटरानी है। शर्मिष्ठा इसकी सेविका बनकर रहती है। यह वृषपर्वा दैत्यराज की पुत्री है। इसको अपनी शय्या पर कभी न बुलाना और न इससे एकांत में मिलना और न इसके अंग को छूना। यहां शर्मिष्ठा को दो हजार सेविकाओं के साथ देवयानी की सेवा में नियुक्त रहने का उल्लेख है (अध्याय -)।

मीमांसा

अहंकार हर जगह लड़ाता है। लेखक ने शुक्राचार्य से गर्वोक्ति में अस्वाभाविक कथन भी करवा डाला कि मैं ही पानी बरसाकर वनस्पतियों का पोषण करता हूं जो असंभव है। शुक्र का वैदिक अर्थ अग्नि भी है; और अग्नि का समुच्चय सूर्य पृथ्वी से जल खींचकर पुनः पृथ्वी पर बरसाता है और वनस्पतियों का पोषण करता है। अतएव यह कथन वैदिक कथन का छिटका हुआ रूप जाना जा सकता है।

शर्मिष्ठा एक या दो हजार दासियों के साथ देवयानी की सेवा करती है, यह अतिशयोक्ति है। इतनी दासियों को लेकर सेवा होगी कि उपद्रव! उस अंधे युग में किस तरह मनुष्य को दास–दासी बनाकर लोग उनसे पशु की तरह सेवा लेते थे, यह उजागर होता है। दासियां कोई ब्रह्मचारिणियां तो नहीं होती थीं। उनको भी पति चाहिए परंतु शुक्राचार्य ने किस तरह ययाति को हड़काया है कि शर्मिष्ठा को अपनी शय्या पर न बुलाना, उससे एकांत में न मिलना, और उसके अंग न छूना। परंतु अंत में वही हुआ जो होना था।

. शुक्राचार्य का ययाति को बूढ़ा होने का शाप

देवयानी को पुत्र पैदा हुआ। एक हजार वर्ष बीतने पर शर्मिष्ठा युवती हो गयी। राजा ययाति ने उसका भी एकांत में पाणिग्रहण कर उसे भी गर्भवती किया। उसका गर्भ प्रकट होने पर एक दिन देवयानी ने उससे पूछा कि यह पेट कैसे बढ़ गया? शर्मिष्ठा ने बहाना बनाकर कहा कि यह एक ब्राह्मण देवता की कृपा का फल है। देवयानी ने कहा तो मंगल है। दोनों हंसकर रह गयीं। धीरे–धीरे शर्मिष्ठा के तीन पुत्र पैदा हुए। देवयानी को सब पता लग गया कि ये सभी बालक राजा ययाति से ही पैदा किये गये हैं।

देवयानी राजा ययाति से रूठ गयी, और उसने कहा कि अब मैं तुम्हारे पास बिलकुल नहीं रह सकती। राजा ययाति उसे हाथ जोड़कर मनाते रहे, परंतु वह

आंसू बहाती हुई अपने पिता शुक्राचार्य के पास चल पड़ी। राजा ययाति भी उसका मनुहार करते हुए उसके पीछे-पीछे चलते रहे। शुक्राचार्य के पास पहुंचे। तुरंत देवयानी ने पिता से कहा–वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा मुझे लांघकर आगे निकल गयी। मुझे तो राजा से दो ही पुत्र हुए–यदु और तुर्वसु, किंतु शर्मिष्ठा को राजा से तीन पुत्र हुए–द्रुह्यु, अनु और पूरु। अतएव मैं ययाति के पास नहीं रह सकती।

शुक्राचार्य ने तुरंत तमककर राजा ययाति को शाप दे डाला–तुम बूढ़े हो जाओ। राजा ने कहा–महाराज! मेरी विषय-तृष्णा अभी शांत नहीं हुई है। आपने मुझे क्या कह डाला? शुक्राचार्य ने कहा–मेरी बात व्यर्थ नहीं जायगी। हां, तुम किसी से जवानी लेकर उसे अपना बुढ़ापा दे सकते हो। राजा ने कहा–आप यह कृपा और करें कि जो मेरा बुढ़ापा लेकर मुझे अपनी जवानी दे, वही मेरी राजगद्दी का अधिकारी हो। शुक्राचार्य ने कहा–एवमस्तु।

राजा ययाति तुरंत बूढ़े हो गये। उन्होंने देवयानी से पैदा हुए अपने पुत्रों से जवानी मांगी, परंतु उन्होंने नहीं दी। शर्मिष्ठा से पैदा हुए पुत्रों से मांगी, तो अंतिम वाला छोटा पुत्र 'पूरु' ने भक्तिभावपूर्वक अपनी जवानी पिता ययाति को देकर उनका बुढ़ापा अपने ऊपर ले लिया। राजा ययाति पुत्र की जवानी लेकर हजार वर्ष भोगों को भोगते हुए तृप्त नहीं हुए, अपितु तृष्णा अधिक बढ़ गयी, तब वे पूरु को गद्दी देकर वन में तप करने चले गये। सच है–कामनाएं भोगों से कभी शांत नहीं होतीं, अपितु आग में घी डालने से आग बढ़ने के समान कामनाएं बढ़ती हैं। (अध्याय -)

मीमांसा

सब समय और सब जगह सारा कलह भोग और अधिकार को लेकर है। एक हजार वर्ष बीतने पर शर्मिष्ठा युवती हुई, घोर अतिशयोक्ति है। युवती तो वह थी ही। उसमें हजार वर्ष की झुठाई जोड़ने की आवश्यकता न थी। बुढ़ापा-जवानी की दो व्यक्तियों में अदला-बदली असंभव है। एक हजार वर्ष तक ययाति भोगों को भोगे, यह अतिशयोक्ति है। तथ्य है, भोग रोग है। उसके त्याग से ही शांति है।

. **जानतु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।**
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते , ,

. ययाति का तप, स्वर्ग प्राप्ति, पतन और उपदेश

राजा ययाति वन में रहकर एक हजार वर्ष तक तप करते रहे। वे तीस वर्षों तक केवल जल पीकर मन और वाणी पर संयम करते रहे। एक वर्ष तक केवल हवा पीकर रहे। एक वर्ष पंचाग्नि तापते रहे। पुनः छह महीने हवा पीकर गुजारे। फिर स्वर्ग-लोक चले गये।

स्वर्ग में जाने पर इंद्र ने ययाति से पूछा कि पूरु को राजगद्दी देते समय तुमने उसे क्या शिक्षा दी? ययाति ने कहा कि मैंने उसे गंगा और यमुना के बीच का क्षेत्र राज्य करने के लिए दिया। अन्य पुत्रों को सीमांत में भेज दिया।

आगे ययाति ने इंद्र से कहा कि क्रोध करने वाले मनुष्य से क्रोध न करने वाला श्रेष्ठ है। असहनशील से सहनशील उत्तम है। प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ है। मूर्खों से विद्वान श्रेष्ठ है। गाली देने वाले तथा निंदा करने वाले को न गाली दे तथा न उसकी निंदा करे। क्रोध के अधीन न हो। किसी का हृदय न दुखाये। शत्रु की भी हिंसा न करे। जी को जलाने वाला, उद्वेग पहुंचाने वाला वचन न बोले। कड़वा मन और वाणी वाला तो अपने मन और मुंह में एक राक्षसी को ढो रहा है। दुष्टों के कटुवचन सहे, साधु पुरुषों के शील का आचरण करे। दुष्ट मनुष्य के मुंह से सदैव कटुवचन रूपी बाण छूटते रहते हैं। उन्हें निर्विकार भाव से सह ले। दया, मैत्री और दान का व्यवहार करे। सदैव शीतल वचन बोले और पूजनीय पुरुषों का सत्कार करे।

इंद्र ने पूछा–ययाति! तुम तपस्वियों में किसके समान हो? ययाति ने उत्तर दिया–मनुष्यों, गंधर्वों, देवताओं और महर्षियों में कोई ऐसा नहीं है जो मेरी बराबरी कर सके। इंद्र ने कहा–तुमने अन्य के महत्त्व को न समझकर उनकी निंदा की है, और अपने आप का व्यर्थ का अहंकार किया है, इसलिए तुम स्वर्ग से गिरकर पृथ्वी पर चले जाओगे। ययाति ने कहा–मैं यहां से जाकर साधु-पुरुषों में रहना चाहूंगा। इंद्र ने कहा–आगे ध्यान रखना, किसी का अपमान न करना।

जब ययाति पृथ्वी पर आये, तब उनकी मुलाकात राजा अष्टक से हुई। उनके पूछने पर ययाति ने अपना परिचय दिया और बताया कि दूसरों की निंदा करने के कारण मैं स्वर्ग से पतित हो गया। अतएव धन, विद्या, अधिकार आदि पाकर कभी अभिमान न करे। ये सब नाशवान हैं। दुख-सुख में समता से रहे। प्रारब्धवशात मिले हुए सुख-दुख को निर्विकार भाव से सह ले। न चिंता करे और न हर्ष करे। अष्टक! मैं सुख-दुख को अनित्य मानता हूं। मैंने दस लाख

वर्ष तक ऊंचे-ऊंचे स्वर्ग-सुख भोगा, किंतु अभिमान करने से वहां से गिरा दिया गया। मैं साधु पुरुषों में आना चाहा, इसलिए आपके पास आ गया।

अष्टक–आप स्वर्ग से पृथ्वी पर क्यों आ गये?

ययाति–धन नष्ट होने पर जैसे उसे स्वजन त्याग देते हैं, वैसे स्वर्ग में पुण्य क्षीण होने पर लोग वहां से गिरा दिये जाते हैं।

अष्टक–मनुष्य का पुण्य कैसे क्षीण होता है?

ययाति–अहंकार करने से, अपने मुख से अपनी बढ़ाई करने से वे भौम नामक नरक में गिरते हैं।

अष्टक–मैंने आज तक भौम नामक नरक नहीं सुना था। वह कैसा है?

ययाति–जीव देह धारणकर विषयों में भटकता है, यही भौम नामक नरक है। जीव अनेक वर्ष-समूहों को इसमें पड़कर व्यर्थ बिता देता है। स्वर्ग के सात द्वार हैं–तप, दान, शम, दम, लज्जा, सरलता और दया। परंतु संत कहते हैं कि इनका अहंकार करने से ये नष्ट हो जाते हैं। मान पाकर आनंदित न हो और अपमान पाकर दुखी न हो। इस संसार में सज्जन ही संत को पहचान पाते हैं, असाधु संत को नहीं पहचान सकते। जो आश्रय है, पुरातन है, जहां मन की गति रुक जाती है, विद्वान उस स्व-आत्मा को जानकर और उसमें स्थित होकर कृतार्थ हो जाते हैं।

अष्टक–ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी के आचरण क्या हैं?

ययाति–शिष्य गुरु के बुलाने पर उसके पास आकर पढ़े। गुरु के कहे बिना उनकी सेवा में लगा रहे। गुरु के सोने के बाद सोवे और उनके जगने के पहले जग जाय। शिष्य विनम्र, जितेंद्रिय, धैर्यवान, सावधान और स्वाध्यायशील हो। गृहस्थ न्याय से उपार्जित धन का उपयोग करे। उससे यज्ञ, दान तथा अतिथि सेवा करे। बिना दिये किसी की वस्तु न ले। वानप्रस्थ घर त्यागकर वन में रहे, आहार-विहार पर संयम रखे। किसी की दी हुई वस्तु न लेकर अपने परिश्रम की कमाई से निर्वाह ले। पाप से दूर रहे। दान दे। किसी को दुख न दे। संन्यासी शिल्पकला से जीवन-निर्वाह न करे। शम-दम संयम से रहे। मन-इंद्रियों को वश में रखे। अलग रहे। गृहस्थ के घर में न रहे। परिग्रह त्यागकर हलका रहे। थोड़ा-थोड़ा चले। एकांत सेवन करे। संन्यासी तब होना चाहिए जब रूप-रस आदि विषयों को जीत ले, त्याग में लाभ लगे। वाक्यसंयमी, कामनाओं का त्यागी, सहनशील, स्वच्छ, आचरणनिष्ठ तथा द्वंद्वातीत रहे (अध्याय -)।

मीमांसा

न कहीं अलग स्वर्ग है और न नरक। हजार तथा दस लाख वर्ष स्वर्गवास आदि काल्पनिक है। तपस्या भी अतिशयोक्ति पूर्ण है। इस स्वर्ग के रूपक में यह समझाया गया है कि अहंकार करने से पुण्य क्षीण हो जाता है। विनम्र, सहनशील, मिष्टभाषी, संयमी और अंतर्मुख होने से जीवन का फल शांति मिलती है।

. अष्टक–ययाति–संवाद और ययाति का दान अस्वीकार

अष्टक–राजन! वानप्रस्थ और संन्यासी में कौन शीघ्र आत्मभाव को प्राप्त होता है?

ययाति–संसारी गृहस्थों के ग्राम में रहते हुए जो इंद्रियजित तथा बेघर संन्यासी है वह शीघ्र आत्मभाव को प्राप्त होता है। जो तपस्वी विषयों में अनुरक्त रहता है, किंतु पीछे पश्चाताप होने पर कल्याण चाहता है, उसे चाहिए कि वह पुनः संयम का रास्ता पकड़े। जो पाप से दूर रहता है और संयम से रहता है वह मोक्ष पाता है।

अष्टक–राजा ययाति! आप स्वर्ग से गिरा दिये गये हैं। मेरे तप के फल में जो मुझे स्वर्ग मिलने वाला है उसे मैं आपको देता हूं। उसे आप स्वीकारें।

ययाति–ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण ही दान लेता है। क्षत्रिय दान नहीं लेता। मैंने कभी दान नहीं लिया है। मैं दान नहीं लूंगा।

इसके बाद प्रतर्दन ने अपनी तपस्या के फल में मिलने वाले स्वर्ग ययाति को देना चाहा, परंतु उन्होंने दान लेना अनुचित समझा। इसके बाद वसुमान ने ययाति से कहा कि मेरी तपस्या के फल में जो मुझे स्वर्ग मिलने वाला है, उसे यदि दान में आप नहीं लेना चाहते तो आप मुझे एक मुट्ठी घास देकर उसे खरीद लें।

ययाति ने कहा कि इस तरह झूठ–मूठ की खरीद–बिक्री न मैंने कभी की है, न कर सकता हूं। यह तो अपने को छलना है।

इसके बाद शिबि ने अपना पुण्य–फल–स्वर्ग ययाति को देना चाहा, परंतु ययाति ने नहीं लिया। अंततः अष्टक ने कहा कि हम सब मिलकर अपने पुण्य फल के स्वर्ग को आपको देना चाहते हैं। ययाति ने कहा–मैं जिसके योग्य हूं

उसके लिए आप सहयोग करें। साधु सत्य का आदर करते हैं। मैंने पहले भी दान नहीं लिया है, आज भी नहीं लूंगा।

अष्टक ने कहा–आकाश में पांच सुवर्णमय रथ दिख रहे हैं। इन्हीं पर चढ़कर मनुष्य सनातन लोकों में जाने की इच्छा करता है। ययाति ने कहा–यह आप लोगों के लिए है।

इसके बाद करीब उन्नीस श्लोक हैं जो प्रक्षिप्त हैं जिनमें क्रम संख्या नहीं है। उनके भाव इस प्रकार हैं–

इतने में वृद्धा माधवी मृग-चर्म लपेटे मृगों के साथ विचरती हुई आयी। माधवी ययाति की पुत्री थी। इतने में वसुमना आ गया जो माधवी का पुत्र था। उसके द्वारा माधवी ने जाना कि पिता श्री राजा ययाति स्वर्ग से गिरा दिये गये हैं। अतएव अपने पिता से कहा–पिता जी! मेरे तप द्वारा जो मुझे स्वर्ग मिला है, उसे मैं आपको देती हूं।

ययाति ने कहा कि यदि यह धर्मयुत है, तो मैं इसे स्वीकारूंगा, और समझूंगा कि मेरी पुत्री तथा दौहित्रों (नातियों) ने मुझे तारा है। इसलिए आज से पितृ-कर्म अर्थात श्राद्ध में दौहित्र परम पवित्र समझा जायेगा। श्राद्ध में तीन वस्तुएं पवित्र होती हैं–दौहित्र, कुतप तथा तिल। दौहित्र लड़की के लड़के को कहते हैं, दिन के आठवें भाग में जब सूर्य का ताप घटने लगता है, उस समय का नाम कुतप[.] है, और तिल एक तिलहन है जो पूजा में पवित्र माना जाता है। इसके साथ तीन गुण प्रशंसा योग्य हैं–पवित्रता, अक्रोध और अत्वरा (स्थिरता)। श्राद्ध में भोजन करने वाले, परोसने वाले और वेदपाठ सुनने वाले पवित्र हैं। श्राद्ध में तिल पिशाचों से, कुश राक्षसों से रक्षा करते हैं, श्रोत्रिय ब्राह्मण पंक्ति की रक्षा करते हैं और त्यागी संत श्राद्ध में भोजन कर लें तो वह अक्षय हो जाता है। अंततः ययाति दौहित्रों से बोले–तुम लोग अवभृथ (यज्ञांत स्नान) करके तैयार हो जाओ। अंततः सब स्वर्ग चले गये। ययाति का दौहित्रों (नातियों) ने उद्धार किया (अध्याय –)।

मीमांसा

यह सब कर्मकांड का जोड़ है। इसमें उपयोगी बातें हैं–अक्रोध, निर्लोभता, पवित्रता, स्थिरता आदि सद्‌गुण। स्वर्ग-नरक कहीं बाहर नहीं हैं। मन का मैलापन नरक है और मन की पवित्रता स्वर्ग है।

. **वैसे कुतप के अर्थ हैं–"ब्राह्मण, द्विज, सूर्य, अग्नि, अतिथि, बैल, सांड़, दोहता, भानजा, अनाज, अंततः अष्टमो मूहूर्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः।" अर्थात दिन का आठवां मुहूर्त कुतप कहलाता है। यही अर्थ ऊपर है।**

. पौरव–राज–वंशावली

गीताप्रेस के महाभारत संस्करण से यह पुस्तक लिखी जा रही है। इस संस्करण में आदि पर्व के चौरानबे (94) वें–पंचानबे (95) वें दो अध्यायों तथा एक सौ चौवन श्लोकों में पौरव–राज–वंशावली उलझी हुई वर्णित है। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने पार्जिटर साहेब के शोधे हुए स्वरूप का अपनी 'भारत सावित्री' नाम की पुस्तक में उपयोग किया है। यहां पर उसे ज्यों–का–त्यों रखा जा रहा है–

महात्मा ययाति के वंशधर पुत्र पुरु के नाम से कुरु–पांडवों का वंश पौरव कहलाया। ययाति का चरित्र सुनकर जनमेजय ने यह जिज्ञासा की–"भगवन! पुरु के वंश में जो प्रतापी वंशकर्ता नृपति हुए, उनके पराक्रमशाली चरित्र मैं सुनना चाहता हूं। इस वंश में निर्वीर्य शीलहीन कोई राजा नहीं सुना जाता। विज्ञानशाली उन यशोधन राजाओं के जो प्रथित चरित्र हों, उनका कृपया बखान करें।"

यह सुनकर वैशम्पायन ने कहा–"पुरु के वंशधर वीर पुरुष इंद्र के सदृश तेजस्वी हुए। उन लक्षणवान राजाओं के विषय में मैं तुमसे कहता हूं।"

इस भूमिका के साथ महाभारतकार ने पौरव वंश के राजाओं की दो सूचियां दी हैं। एक वें अध्याय में और दूसरी वें अध्याय में। इनमें से पहली सूची पुराणों के साथ अधिक मिलती है। प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक अनुश्रुति की छानबीन करने वाले पार्जिटर महोदय ने पौरव–राज–वंशावली पर विस्तार से विचार करते हुए इस सामग्री को विश्वसनीय ठहराया है।

पौरव राजाओं की नामावली आठ पुराणों में पायी गयी है–वायु (अ०); ब्रह्मांड (अ०); हरिवंश (अ० –); मत्स्य (अ०); विष्णु (अ० ,); अग्नि (अ०); गरुड (अ० ,); और भागवत (,); इस राजावली के मोटे तौर पर तीन भाग किये जा सकते हैं–प्रथम भाग पुरु से अजमीढ़ तक, दूसरा अजमीढ़ से कुरु तक और तीसरा कुरु से पांडवों तक।

पौरव राजावली का प्रथम भाग–पुरु से अजमीढ़ तक

पुराणों के साथ तुलनात्मक अनुसंधान से इस वंशावली का रूप कुछ इस प्रकार ठहरता है–

. **वासुदेवशरण अग्रवाल की कृति पूना संस्करण से है। इसलिए अध्याय की संख्या में गीताप्रेस से अंतर है।**

मनु-इला-पुरुरवा-आयु-नहुष-ययाति-पुरु-जनमेजय (प्रथम)-प्रचिन्वन्त-प्रवीर- मनस्यु- अभयद- सुधन्वन- धुन्ध-बहुगव-संयाति-अहंयाति-रुद्राश्व ऋचेयु-मतिनार-तंसु।

पुरु से मतिनार तक के नामों के विषय में पुराण प्रायः सर्वसम्मत हैं। मतिनार अति प्रतापी राजा थे। उनके बाद तंसु के समय में इस वंश का सौभाग्य विलुप्त हो गया। लगभग इसी समय अयोध्या में सूर्यवंश के युवनाश्व और मान्धाता प्रतापी और विजिगीषु राजा हुए। संभवतः पौरवों का राज्य इक्ष्वाकुओं के वर्धमान चक्र में लीन हो गया।

तंसु से दुष्यंत तक की राजावली अनिश्चित और लुप्त है। केवल इतना ज्ञात होता है कि इलिना नाम की एक तेजस्वी स्त्री हुई। उसके पौत्र दुष्यंत थे। महाभारत में इलिना को तंसु का पुत्र इलिन मान लिया गया है, जो पुराणों के अनुसार भ्रांत है। दुष्यंत ने पौरवों की विचलित राज्य लक्ष्मी को पुनः प्रतिष्ठापित किया।

दुष्यंत से हस्तिन (जिनका दूसरा नाम बृहत था) तक की राजावली महाभारत और पुराणों में बहुत कुछ मिलती है, जो इस प्रकार है-

दुष्यंत-भरत-(भारद्वाज)-वितथ-भुवमन्यु या भुवन्यु-बृहत्क्षेत्र-सुहोत्र-हस्तिन-अजमीढ़।

पौरव-राजावली का दूसरा भाग-अजमीढ़ से कुरु तक

हस्तिन ने हस्तिनापुर बसाया। उनके दो पुत्र हुए-अजमीढ़ और द्विमीढ़। अजमीढ़ हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठे और उन्होंने पौरवों के मूल वंश को आगे बढ़ाया। द्विमीढ़ से एक छोटा वंश अलग चला, जिसमें यवीनर, धृतिमान आदि राजा हुए। अजमीढ़ से कुरु तक के राजाओं को लेकर पौरव-राजावली के नाम पुराणों में एक से हैं। अजमीढ़ के तीन पुत्र हुए। प्रत्येक से एक-एक वंश चला। सब में श्रेष्ठ ऋक्ष हस्तिनापुर की राज-आसंदी पर बैठे।

ज्ञात होता है कि यहां ऋक्ष के पहले और पीछे राजाओं के नाम लुप्त हो गये हैं। ऋक्ष के पहले की आठ पीढ़ियां और बाद की छः पीढ़ियां अन्य वंशों के साथ समसामयिकता का मिलान करते हुए खोई हुई जान पड़ती हैं। ऋक्ष के वंश आगे चलाने वाले वंशकार पुत्र संवरण हुए। इनके समय में पौरव-राज्य को विपत्ति का सामना करना पड़ा। प्रजाओं का भारी संक्षय हुआ और राष्ट्र को नानाविध नाश ने ग्रस लिया। पांचाल के राजा ने हस्तिनापुर को दबोच लिया और संवरण भागकर महान सिंधुनद के पास कहीं पर्वतों में जा छिपे।

वहां बहुत काल तक रहने के बाद कभी राजा की वसिष्ठ ऋषि से भेंट हुई। संवरण ने उनका स्वागत-सत्कार करके प्रार्थना की, "भगवन! आप हमारे पुरोहित बनें तो मैं राज्य-प्राप्ति के लिए पुनः प्रयत्न करूं।" वसिष्ठ ने प्रार्थना स्वीकार की और अपने प्रयत्न एवं युक्ति से पौरवों को पुनः उनके राज्य में प्रतिष्ठित किया। सब राजा लोग फिर से उन्हें बलि (कर) देने लगे।

संवरण की सुंदरी रानी का नाम तपती था। उससे कुरु नामक पुत्र हुआ। समय आने पर प्रजाओं ने उसे धर्मज्ञ जानकर राजा वरण किया। उसी के नाम से कुरु-जांगल प्रदेश विख्यात हुआ और तपस्वी कुरु ने ही अपने तप से कुरुक्षेत्र को पवित्र किया।

इस प्रकार कुरु-पांडव वंश के संबंध में तीन नामों की व्युत्पत्ति मिल जाती है। वे पुरु से पौरव, भरत से भारत और कुरु से कौरव कहलाये।

पौरव-वंशावली में अजमीढ़ का नाम महत्त्वपूर्ण है। उनके वंशज होने के कारण धृतराष्ट्र आदि को महाभारत में प्रायः आजमीढ़ भी कहा गया है। उन्हीं अजमीढ़ के दो पुत्र नील और बृहदश्व हुए। नील ने गंगा के उत्तर अहिच्छत्रा में उत्तर पांचाल का राज्य स्थापित किया। छोटे बृहदश्व ने गंगा के दक्षिण तट से चर्मणवती (चंबल) तक के प्रदेश में दक्षिण पांचाल राज्य की स्थापना की, जिसकी मुख्य राजधानी कांपिल्य थी और दूसरी कांकडी नाम की नगरी थी।

इस प्रकार हस्तिनापुर एवं उत्तर-दक्षिण पांचाल इन तीनों वंशों के नृपति अपने समान पूर्व-पुरुष भरत-चक्रवर्ती के नाम से भारत कहलाने लगे। यहां स्मरणीय है कि अजमीढ़ से कुरु तक के दीर्घकाल में लगभग पंद्रह पीढ़ियों का जो युग है उसमें हस्तिनापुर की मुख्य पौरव छत्रावली प्रायः सूनी है। शक्ति का केंद्र हटकर उत्तर पांचाल में चला गया था। यहीं नील के वंश में वे प्रतापी सम्राट हुए, जिनके नामों की गूंज बार-बार ऋग्वेद के मंत्रों में सुनाई पड़ती है।

इस वंश के संबंध में न केवल सब पुराण एकमत हैं वरन इन नामों को ऋग्वेद से जो समर्थन प्राप्त होता है उससे पुराण वंशावली की विश्वसनीयता दृढ़ता से प्रमाणित हो जाती है। उत्तर पांचाल के इस सुप्रथित देश में भृम्यश्व, मुद्गल, वध्रयश्व, दिवोदास, मित्रयु, सृंजय, च्यवन, सुदास, सहदेव और सोमक नामक राजा हुए।

सोमक हस्तिनापुर के पौरव राजा कुरु के समकालीन थे। भृम्यश्व के पुत्र मुद्गल का नाम भार्म्यश्व भी था। वध्रयश्व को ऋग्वेद (, ,) में दिवोदास का पिता कहा गया है। सृंजय (ऋ. , ,) और च्यवन (ऋ. , ,) का भी उल्लेख है। च्यवन का ही दूसरा नाम पंचजन था, जो पिजवन का ही दूसरा पाठ है। उनके पुत्र पैजवन सुदास (ऋ. , ,) को

दिवोदास का वंशज कहा गया है (ऋ. , ,)। सुदास के सहदेव और सहदेव के सोमक हुए।

इस युग में पांचाल ने हस्तिनापुर के वंश को आत्मसात कर रखा था और दोनों ही अपने आप को समान रूप से भारत मानते थे।

इसी कारण महाभारत में भी यत्र-तत्र कुरु-पांडवों को, जो हस्तिनापुर की प्रधान पौरव-शाखा में हुए, उत्तर पांचाल के राजाओं के वंशज मानकर सृंजय और सोमक विशेषण दिये गये हैं।

पौरव-राजावली का तीसरा भाग-कुरु से पांडवों तक

हस्तिनापुर के प्रधान पौरव-शाखा में कुरु के जन्म लेने पर इस वंश का पुनः भाग्योदय हुआ। कुरु के तीन पुत्र हुए-ज्येष्ठपुत्र परीक्षित (प्रथम), तब जह्नु और सुधन्वा। परीक्षित प्रथम का पुत्र जनमेजय हुआ। इसी वंश में पहले पुरु के पुत्र का नाम जनमेजय था। अतएव परीक्षित के पुत्र को स्पष्टता के लिए जनमेजय द्वितीय कहना उपयुक्त होगा। अभाग्यवश इस पारीक्षित जनमेजय की गार्ग्य ऋषि से करारी खटपट हो गयी, जिसके कारण गार्ग्य ने उसे शाप दिया, और कहा जाता है कि समस्त पौरव-प्रजा ने अपने राजा का परित्याग कर दिया। दुखी पारीक्षित जनमेजय ऋषि इंद्रोत दैवाय शौनक की शरण में गया। ऋषि ने उसे अश्वमेध यज्ञ द्वारा शुद्ध और पुनः प्रतिष्ठित करना चाहा, किंतु जनमेजय द्वितीय का वंश लुप्त ही हो गया।

इस पारीक्षित जनमेजय के पुत्र श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन तीन पारीक्षित थे, किंतु पिता के अपराध से वंशावली में उन्हें स्थान नहीं मिला। अतएव पौरव राजा कुरु के दूसरे पुत्र जह्नु से अग्रिम वंशावली चली। महाभारत में इसके बाद राजाओं की दो वंशावलियां आपस में अनमिल हैं। मुख्य बात यह है कि दूसरी वंशावली में सार्वभौम आदि दस राजाओं के नाम जो पारीक्षित जनमेजय के बाद आने चाहिए, किसी गड़बड़ी के कारण मतिनार से पहले गिना दिये गये हैं। महाभारत की प्रथम वंशावली में यह घोटाला नहीं है और पुराणों के साथ उसका पूरा मेल है। उसे संशोधित करके जो छत्र-क्रम निश्चित किया गया है, वह इस प्रकार है-

जह्नु का पुत्र सुरथ या विदूरथ-सार्वभौम-जयत्सेन-अराधिन महाभौम-अयुतायुः-अक्रोधन-देवातिथि-ऋक्ष द्वितीय-भीमसेन-दिलीप-प्रतीप (ऋष्टिषेण)-शांतनु-(भीष्म)-विचित्रवीर्य-धृतराष्ट्र-पांडव-अभिमन्यु-परीक्षित द्वितीय-जनमेजय तृतीय।

यही पौरव–वंशावली का मूल पाठ है, जिसमें ययाति–पुत्र पुरु से लेकर अभिमन्यु तक के राजाओं की आनुपूर्वी स्पष्टता से समझी जा सकती है। महाभारत के कथाप्रसंग में अनेक बार इन नामों की पुनरावृत्ति होती रहेगी। उनके अते–पते के लिए इस प्रकरण की राजसूची को बार–बार देखना या ध्यान में रखना आवश्यक होगा। इसी कारण अल्परस होते हुए भी आरंभ में इस विषय का उपन्यास कर दिया गया है।

पार्जिटर महोदय ने पैनी न्यायाधीश बुद्धि से पुराणों की और महाभारत की समग्र उपलब्ध सामग्री का संकलन और तुलनात्मक अध्ययन करके हस्तिनापुर के पौरव और अयोध्या के इक्ष्वाकु आदि प्राचीन राजवंशों की आनुपूर्वी और समसामयिकता का निरूपण किया था। उसके आधार पर ऊपर का विवेचन किया गया है, जिसके लिए हम उनके अनुग्रहीत हैं।''

. शांतनु और गंगा

इक्ष्वाकुवंश में महाभिष नाम के राजा हुए हैं। वे प्रतापवान तथा सत्यवादी थे। उन्होंने एक हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ किया। उसके फल में स्वर्ग गये। इंद्र तथा देवताओं के साथ राजा महाभिष स्वर्ग में बैठे थे। इतने में नदियों में श्रेष्ठ गंगा सुंदरी स्त्री के रूप में वहां जा पहुंची। हवा तेज होने से गंगा का वस्त्र अंग से उठ गया। अतः उनके अंग दिखने लगे। सब देवता सिर नीचा कर लिये परंतु राजा महाभिष गंगा के खुले अंग देखते रहे। अतएव ब्रह्मा उन पर क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिये कि तुम पुनः मनुष्य होकर पृथ्वी पर रहो। ये ही महाभिष राजा प्रतीप के पुत्र हुए और नाम हुआ शांतनु।

दूसरी कथा है, आठ वसु वन में विचर रहे थे। वसिष्ठ ऋषि की गाय देखकर वसुगण लुभा गये। फिर द्यौ नामक वसु ने अपने भाइयों की सहायता से वसिष्ठ की गाय का अपहरण कर लिया। वसिष्ठ ने उन आठों वसुओं को शाप दिया कि तुम मनुष्य योनि में जन्मो।

वसुगण घबराये। वसिष्ठ से मनुहार करने लगे। वसिष्ठ को दया आयी। उन्होंने कहा कि मेरा शाप तो व्यर्थ नहीं जायेगा, किंतु जिस मां से तुम क्रमशः जन्म लोगे वह तुम्हें पानी में फेंककर मारती जायेगी और तुम लोग जल्दी–जल्दी मनुष्य चोला छोड़कर शाप से मुक्त हो जाओगे। परंतु तुम आठों में जो 'द्यौ'

. **भारत सावित्री, पृष्ठ – , सस्ता साहित्य मंडल, ई.।**

नाम का वसु है, यह संसार में दीर्घकाल रहकर अपने पाप का फल भोगेगा, क्योंकि इसी ने अन्य वसुओं को उकसाकर मेरी गाय का अपहरण किया है। इसी का नाम भीष्म होगा। यह अविवाहित तथा जीवनपर्यंत स्त्री-संपर्क तथा संतान से रहित रहेगा।

वसुओं ने गंगा से प्रार्थना की कि आप अपने गर्भ में हमें क्रमशः लेकर जन्मते ही जल में फेंक देना जिससे हम लोगों का शीघ्र ही मनुष्य जन्म से मोक्ष हो जाय। आपसे इसलिए प्रार्थना करते हैं कि हमें साधारण मनुष्य-स्त्री के गर्भ में न जाना पड़े। गंगा ने स्वीकार लिया।

राजा प्रतीप गंगा के किनारे उपासना में बैठे थे। गंगा नदी सुंदर स्त्री का रूप धारणकर उनके पास आयी और उनकी दाहिनी जांघ पर बैठ गयी और उनसे प्रार्थना करने लगी कि तुम मेरे पति हो जाओ। प्रतीप ने नहीं स्वीकारा। उन्होंने कहा कि जो मेरे वर्ण की न हो और परायी हो उस स्त्री का मैं संग नहीं करता। अंततः उन्होंने कहा कि तुम मेरी दाहिनी तरफ बैठी हो, तुम्हें मालूम होना चाहिए कि यह पुत्र, पुत्री या पुत्रवधू का आसन है। पत्नी बांयी तरफ बैठती है। अतएव मैं तुम्हें अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार सकता हूं।

गंगा ने कहा-तुम्हारे पुत्र के साथ एक शर्त के आधार पर विवाह करूंगी, वह यह है-मैं जैसा भी शुभ या अशुभ आचरण करूं, तुम्हारा पुत्र उसमें थोड़ा भी चूं-चपाट न करे। वह मेरी सारी क्रिया चुपचाप सह ले। राजा प्रतीप ने स्वीकार लिया।

एक दिन राजा प्रतीप ने अपने पुत्र शांतनु से कहा-यदि गंगा के तट पर घूमती हुई तुम्हें कभी एक सुंदरी युवती मिले और वह तुमसे गर्भवती होना चाहे तो तुम उससे मत पूछना-"अंगने! तुम कौन हो, किसकी पुत्री हो?" उसको पत्नी बना लेना, और यह ध्यान रखना कि उसके किसी भले-बुरे कर्म पर तुम उससे कुछ न कहना और उससे अप्रिय वचन न बोलना।

एक दिन शांतनु शिकार करते हुए गंगा के तट पर घूम रहे थे। इतने में गंगा नदी सुंदरी स्त्री बनकर उनके पास आ गयी। दोनों परस्पर मोहित हो गये। राजा शांतनु ने कहा-हे सुंदरी! तुम देवी, दानवी, गंधर्वी, अप्सरा, यक्षी, नागकन्या अथवा मानवी, कुछ भी क्यों न होओ, तुम मेरी पत्नी बन जाओ।

गंगा ने कहा कि मैं आपकी महारानी बनकर आपके अधीन रहूंगी। परंतु एक शर्त है-मैं भला-बुरा जो कुछ करूं, आप उसमें बोल तक नहीं सकते और मुझे कभी अप्रिय वचन नहीं कह सकते। यदि आपने कभी टोका या

अप्रिय वचन कहा तो मैं आपको छोड़कर चली जाऊंगी। राजा शांतनु ने शर्त स्वीकार ली।

गंगा को पुत्र उत्पन्न होने लगे और वह उन्हें गंगा नदी में फेंककर मार देती। इस प्रकार उसने क्रमशः सात पुत्रों को नदी में फेंककर मार डाला। जब आठवां पुत्र पैदा हुआ, तब राजा शांतनु से न रहा गया। उन्होंने सोचा कि यह इसे भी गंगा नदी में फेंककर मार डालेगी। अतएव उन्होंने उससे कहा–"अरे, तू इस बच्चे की हत्या मत कर! तू किसकी पुत्री है, कौन है? क्यों अपने ही पुत्रों को मारे डालती है? पुत्र-हत्यारिन ! तेरे को पुत्रहत्या का यह घोर निंदित और महान पाप लगा है।"

गंगा ने कहा–"तुम्हारे इस आठवें पुत्र को नहीं मारूंगी; परंतु शर्त के अनुसार मैं अब तुम्हारे पास नहीं रहूंगी। मैं जह्नुपुत्री गंगा हूं। महर्षियों का कार्य सिद्ध करने के लिए मैं तुम्हारे पास रहती थी, शापित लोगों का पाप काटने आयी थी। यह आठवां पुत्र आठ वसुओं में द्यौ है। इस पर अन्य सातों के भी अंश हैं। यह जब सुशिक्षित और जवान हो जायेगा तब इसे तुम्हें दे दूंगी। इसका नाम गंगादत्त रखना।" इसी का नाम आगे देवव्रत हुआ और अंततः भीष्म जो भीष्म पितामह नाम से प्रसिद्ध हुए (अध्याय –)।

मीमांसा

पौराणिक पंडितों को संयत भाषा बोलने की आदत कम है। इसीलिए वे यहां राजा महाभिष से एक हजार अश्वमेध तथा सौ राजसूय यज्ञ करवा लेते हैं जो किसी एक के जीवन में संभव नहीं है। स्वर्ग में उनको शाप मिलना झूठी कल्पना है। सीधी बात है कि राजा शांतनु को गंगातट पर गंगा नाम की सुंदरी युवती मिली जो प्रतिभावान, विलासिनी और हठीली थी। राजा उस पर मोह गये, और इतना मोहे कि उसकी कठोर शर्त स्वीकार लिए। चाहे वह भला करे या बुरा, उसे टोक नहीं सकते। गंगा विलासी भावना से पुत्रों को मारती गयी।

एक अपरिचित मां-बाप तथा गोत्र की लड़की गंगा राजा शांतनु की पत्नी और महामहिम भीष्मपितामह की मां बने यह बात पंडितों को खटकी। इसलिए स्वर्गलोक और शाप की झूठी कल्पना करके असत्य कथा लिखी गयी जो बालमनोरंजन मात्र है। जड़ नदी मानुष-स्त्री नहीं बन सकती।

. **मा वधीः कस्य कासीति किं हिनत्सि सुतानिति।**
पुत्रघ्नि सुमहत् पापं सम्प्राप्तं ते सुगर्हितम् , ,

मां-बाप तथा जाति-बिरादरी का पता होने-न होने से मनुष्य के मूल्य में कोई अंतर नहीं पड़ता। मनुष्य का मूल्यांकन उसके ज्ञान और आचरण से होता है। शांतनु महान हैं, भीष्म पितामह महान हैं और गंगा नाम की युवती भी महान है, केवल उसकी विलासी भावना अनुचित है जिसने सात पुत्रों की हत्या करवायी। इसके समाधान में आठ वसुओं को पंडित लेखक ने घसीट लिया। बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार-अग्नि, पृथ्वी, वायु, अंतरिक्ष, सूर्य, देवलोक, चंद्रमा और नक्षत्र गण, ये आठ वसु हैं। देवलोक का मतलब है चमकता क्षेत्र। ये सब जड़ हैं। वसिष्ठ की गाय परशुराम को तथा वसुओं को दुख में डाल देती है। पंडितों के लिए वसिष्ठ की गाय एक मोहरा बन गयी है जिसे जहां चाहते हैं वहां उपस्थित कर देते हैं।

. राजा शांतनु का निषाद-कन्या पर मोह और देवव्रत की प्रतिज्ञा

राजा शांतनु हस्तिनापुर में रहकर राज्य करते थे। उनकी राज्य व्यवस्था अच्छी थी। वे प्रतापवान थे। वे एक दिन गंगा तटवर्ती वन में शिकार करने गये। उन्होंने देखा कि गंगा में पानी बहुत कम है। आगे जाकर देखा, एक कुमार ने अपने बाणों से गंगा का जल अवरुद्ध कर दिया है। उन्हें आश्चर्य हुआ (वस्तुतः यह अतिशयोक्ति है)।

गंगा अपने पुत्र को लेकर सामने आयीं। गंगा-जल को गंगादत्त ने अपने बाणों से बींध कर रोक रखा था। गंगा ने शांतनु से कहा-नरेश! यह आपका आठवां पुत्र है। इसको मैंने पाल-पोष और पढ़ा-लिखाकर मजबूत कर दिया है। अब आप इसे ले जाइए। यह आपका पुत्र छहों अंगों सहित चारों वेदों का वसिष्ठ से अध्ययन कर लिया है। इसने बृहस्पति तथा परशुराम की विद्या पढ़ ली है। राजा शांतनु अपने पुत्र गंगादत्त को लेकर हस्तिनापुर चले गये। उन्होंने गंगादत्त (देवव्रत) को युवराज पद दिया।

चार वर्ष के बाद एक दिन शांतनु यमुना नदी के तट पर घूम रहे थे। उन्हें एक मनोहर युवती दिखायी दी। उन्होंने उससे परिचय पूछा। उसने बताया कि मैं निषादराज की कन्या हूं। उनकी आज्ञा से मैं धर्मार्थ नाव चला रही हूं। शांतनु उस कन्या को पत्नी रूप में वरण करना चाहे, इसलिए निषादराज से अपना मंतव्य बताया। निषादराज ने कहा-मेरी कन्या युवती हो गयी है। मैं स्वयं इसको योग्य वर से ब्याहना चाहता हूं। आप जैसा वर मुझे अन्य कहां मिलेगा।

परंतु इसके साथ एक शर्त है। राजा ने कहा–पहले शर्त बताओ, तब विचार करूं कि शर्त निभा पाऊंगा कि नहीं।

एक शर्त में राजा गंगा से दुख पा चुके थे, इसलिए शर्त का नाम सुनकर वे भयभीत हो गये। निषादराज ने राजा से कहा कि मेरी कन्या से जो पुत्र पैदा हो उसी को राजा बनाया जाय, दूसरे को नहीं। शांतनु को यह शर्त बहुत पीड़ादायक लगी। शर्त स्वीकारने की हिम्मत नहीं हुई। किंतु निषाद-कन्या के मोह में वे रात-दिन सोचते-सोचते मन-ही-मन घुलने लगे।

देवव्रत ने पिता की दयनीय स्थिति देखकर उनसे उसका कारण पूछा। शांतनु ने कहा–तुम मेरे केवल एक पुत्र हो। यदि तुम्हारा कहीं कुछ हो जाय तो वंश डूब जायेगा। एक पुत्र और एक आंख नहीं के बराबर हैं। मैं चाहता हूं कि मैं अपना दूसरा विवाह करूं और उससे अन्य भी पुत्र पैदा करूं जिससे वंश डूबने का संदेह न रह जाय।

देवव्रत ने पिता के बूढ़े मंत्रियों से राय-बात की। उसके बाद राजा के रथचालक से पूछा कि तुम राजा के साथ रहते हो। बताओ, राजा को किसी विशेष स्त्री में प्रेम है? रथचालक ने वह सब बता दिया जो निषादराज से बात हुई थी। उसने बताया कि एक धीवर-कन्या है, उसी में राजा आसक्त हैं। उसकी शर्त है कि मेरी कन्या से उत्पन्न पुत्र राजगद्दी पर बैठे।

देवव्रत ने निषादराज से जाकर कहा–मैं इस शर्त को स्वीकारता हूं। आपकी पुत्री सत्यवती से जो पुत्र पैदा होगा वही राजगद्दी पर बैठेगा। निषादराज भी पक्का चतुर था। उसने कहा–बलवान से कौन शत्रुता ले। आपकी शर्त आपका पुत्र न स्वीकारे, तब क्या होगा? देवव्रत ने कहा–हे निषादराज! आज से लेकर मेरा आजीवन अखंड ब्रह्मचर्य व्रत चलता रहेगा–*अद्यप्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति* (अध्याय , श्लोक)।" इसी प्रतिज्ञा के साथ गंगादत्त उर्फ देवव्रत का नाम भीष्म हो गया। भीष्म का अर्थ है भयंकर। उनकी भयंकर प्रतिज्ञा से उनका भीष्म नाम विख्यात हुआ।

भीष्म ने निषादराज की कन्या सत्यवती को रथ पर बैठाकर राजभवन लाकर पिता शांतनु को सौंप दिया। शांतनु को संतोष हो गया (अध्याय)।

. सत्यवती से चित्रांगद और विचित्रवीर्य की उत्पत्ति और गद्दी

राजा शांतनु से सत्यवती को दो पुत्र पैदा हुए चित्रांगद और विचित्रवीर्य। थोड़े दिनों में राजा शांतनु मर गये। भीष्म ने चित्रांगद को राजगद्दी पर बैठाया,

परंतु वह खुराफाती निकला। वह सब राजाओं का अपमान करता था, अपने समान किसी को नहीं मानता था। वह एक गंधर्वराज से लड़ गया। उसका नाम भी चित्रांगद था। सरस्वती तट पर तीन वर्ष युद्ध चला। उसमें शांतनु का बड़ा पुत्र चित्रांगद मारा गया।

विचित्रवीर्य जो शांतनु का छोटा पुत्र था, भीष्म ने उसी को राजगद्दी पर बैठाया। विचित्रवीर्य भीष्म का सम्मान करते थे और भीष्म उनकी रक्षा करते थे (अध्याय)।

. विचित्रवीर्य का विवाह और निधन

विचित्रवीर्य जवान हो चले। भीष्म को उनके विवाह की चिंता हुई। उसी समय काशीनरेश की तीन कन्याओं का स्वयंवर था, जिनके नाम थे–अंबा, अंबिका और अंबालिका। भीष्म जी उस स्वयंवर में गये। उन्हें देखकर कन्याएं उनसे दूर हट गयीं। वे विवाह की उम्र पार कर गये थे। उनको अपना विवाह करना भी नहीं था। उन्हें तो छोटे भाई विचित्रवीर्य के लिए दुलहनें चाहिए थीं।

अन्य राजा भीष्म का परिहास करने लगे–ये बूढ़े बाबा कैसे स्वयंवर में आ गये? इनकी मानो झूठी प्रतिज्ञा है कि ये जीवनपर्यंत ब्रह्मचारी रहेंगे। ये अपना विवाह करके जगत में क्या मुंह दिखायेंगे?

भीष्म का तो और ही मन था। जो मन में था उन्होंने राजाओं के बीच प्रकट कर दिया–राजाओ! मैं इन कन्याओं का अपहरण करके ले जाता हूं, जिनको मुझसे युद्ध करना हो सामने आ जाय। भीष्म उन तीनों कन्याओं को बलपूर्वक रथ में बैठाकर चलते बने।

भीष्म का राजाओं से युद्ध हुआ। भीष्म ने सबको पछाड़ दिया। भीष्म को शाल्व राजा ने ललकारा और उन्हें चोट पहुंचाई; परंतु अंततः भीष्म ने शाल्व पर विजय की। केवल शाल्व की जान छोड़ दी। भीष्म तीनों कन्याओं को लेकर हस्तिनापुर पहुंचे और उनका विचित्रवीर्य के साथ विवाह करना चाहा।

उन तीनों कन्याओं में जो बड़ी थी, जिसका नाम अंबा था, उसने भीष्म से कहा कि मैंने पहले सौभनरेश शाल्व का वरण कर लिया है और इस स्वयंवर में मैं उन्हीं के गले में जयमाला डालती। भीष्म ने ऐसा सुनकर और ब्राह्मणों से राय लेकर अंबा को शाल्व के पास भेज दिया और अंबिका और अंबालिका का विवाह विचित्रवीर्य से कर दिया।

विचित्रवीर्य उन दोनों पत्नियों के विलास में डूब गये और सात वर्षों

में अपनी ऐयाशी के कारण राजयक्ष्मा के शिकार हो गये। वैद्यों ने उन्हें बचाने का बड़ा प्रयत्न किया, परंतु वे भरी जवानी में जरजर होकर मर गये (अध्याय)।

मीमांसा

कैसा समय था! भीष्म जैसे लोग का काशीनरेश जैसे लोगों की स्वयंवर-सभा से कन्याओं का अपहरण करना तथा युद्ध करना। श्रीकृष्ण का विदर्भनरेश भीष्मक की कन्या रुक्मिणी का अपहरण करना और युद्ध करना तथा श्रीकृष्ण का अपनी बहिन सुभद्रा में अर्जुन को मोहग्रस्त देखकर अर्जुन द्वारा उसका अपहरण करवा देना आज के लिए अस्वाभाविक तथा घोर असभ्यता है, किंतु उस समय इसको वीरता मानी जाती थी। उस समय के प्रतिष्ठित लोगों की यह करतूति थी। निषादराज ने अपनी पुत्री सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को ही हस्तिनापुर की राजगद्दी पर बैठने का हठाग्रह किया था। उसका आज क्या मूल्य रहा! सारी भावुकता पर चार दिन में पानी फिर जाता है।

. सत्यवती का आग्रह, भीष्म की अस्वीकृति और वेदव्यास से गर्भाधान

सत्यवती ने भीष्म से कहा–बेटा! मेरा पुत्र विचित्रवीर्य चल बसा। राजगद्दी सूनी है, वंश सूना है। तुम धर्मज्ञ हो, विद्वान हो, सब प्रकार योग्य हो। तुम मेरी दोनों पुत्रवधुओं–अंबिका और अंबालिका को गर्भवती करो जिससे आगे राजवंश चले, और तुम स्वतः राजगद्दी पर अपना अभिषेक कराकर प्रजा पर शासन करो।

भीष्म ने कहा–माता! आपने जो कहा वह धर्मयुक्त है। परंतु मैं न राज्य के लोभ से राजगद्दी पर बैठूंगा और न स्त्री सहवास करूंगा। मैं तीनों लोकों का राज्य, देवताओं का साम्राज्य और इन दोनों से अधिक महत्त्व की वस्तु त्याग सकता हूं, परंतु सत्य को नहीं त्याग सकता। पृथ्वी आदि पांचों तत्त्व अपने गुण-धर्म को भले छोड़ दें, परंतु मैं अपने सत्य को नहीं छोड़ सकता।

सत्यवती ने कहा–बेटा, मैं तुम्हारी सत्यनिष्ठा जानती हूं, जो तुमने मेरे लिए घोषणा की थी। परंतु मेरा आग्रह है कि आपत धर्म का विचारकर राज्य-भार स्वीकार करो। तुम्हारे वंश की परंपरा नष्ट न हो। पुत्र की कामना से दीन बात बोलने वाली और धर्म-रहित बात कहने वाली सत्यवती से भीष्म ने पुनः कहा–"राजमाता! धर्म को समझो, हम सबका नाश न करो। क्षत्रिय का सत्य

छोड़ना अधर्म है। शांतनु की संतान परंपरा जिससे बनी रहे वह उपाय मैं बताता हूं–"किसी गुणवान ब्राह्मण को धन देकर उससे बहुओं का गर्भाधान करा लो।"

सत्यवती लज्जित होकर मुस्कराती हुई लड़खड़ाती भाषा में बोली–तुम पर मेरा विश्वास है। अपने कुल की वंश-परंपरा सुरक्षित रखने के लिए मैं तुमसे एक बात बताती हूं। तुम्हें बताये बिना यह काम होगा नहीं। मेरी बात सुनकर उचित राय दो। मेरे पिता की एक नाव थी, जो सेवा में चलायी जाती थी। एक दिन मैं नाव चला रही थी। मैं युवती थी। पराशर मुनि आये। उन्हें यमुना पार करना था। वे मेरी नाव में बैठे और मुझे देखकर काम-पीड़ित हो गये। उन्होंने अपनी कामना पेश की। मैं उधर पिता से डरती और इधर पराशर मुनि के कोप से। अंततः मेरे न चाहते हुए उन्होंने मुझे नाव में ही गर्भवती कर दिया। उसी के परिणाम में बच्चा पैदा हुआ, जिसके नाम द्वैपायन, कृष्ण और वेदव्यास प्रसिद्ध हुए। बालू के द्वीप में उस बच्चे को रखने से द्वैपायन, काला रंग का होने से कृष्ण तथा वेदों का संपादन करने से उनके वेदव्यास नाम हुए। उन्होंने मेरे पास से जाते समय कहा था कि जब मेरी आवश्यकता होगी, तब मेरा स्मरण करना। अतएव वे मेरे और तुम्हारे कहने पर विचित्रवीर्य की पत्नियों को अवश्य गर्भवती करेंगे। भीष्म ने सत्यवती की बात का समर्थन किया।

सत्यवती के स्मरण करने पर वेदव्यास आये। माता ने अपनी बात कही। वेदव्यास ने स्वीकार लिया। परंतु वेदव्यास ने कहा कि विचित्रवीर्य की पत्नियां–अंबिका और अंबालिका एक वर्ष तक संयम से रहकर व्यतीत करें। उसके बाद यह काम होगा। सत्यवती ने कहा–मुझे दोनों रानियों से जल्दी-से-जल्दी पुत्र प्राप्त करने की लालसा है। राजगद्दी सूनी है। भीष्म बैरागी हैं। अतएव तुम दोनों रानियों को शीघ्र गर्भवती करो।

इसके बाद सत्यवती ने अंबिका और अंबालिका को समझाकर तैयार किया। वेदव्यास अंबिका के कक्ष में गये। उनका रूप भयानक था। वे काले थे। जटाएं पिंगल, दाढ़ी-मूंछ भूरी और आंखें चमक रही थीं। अंबिका ने मारे भय के अपनी आंखें बंद कर लीं। गर्भवती तो हो गयी, परंतु समय आने पर उससे अंधे धृतराष्ट्र पैदा हुए।

. **ब्राह्मणो गुणवान् कश्चिद् धनेनोपनिमंत्र्यताम् ।**
विचित्रवीर्यक्षेत्रेषु यः समुत्पादयेत् प्रजाः , ,
दूसरे दिन वेदव्यास अंबालिका के कक्ष में गये। यह भी इन्हें देखकर फीकी

एवं पीली पांडु वर्ण की हो गयी। गर्भवती तो यह भी हो गयी, परंतु इससे जो समय से बच्चा पैदा हुआ, पीले रंग का रोगी हुआ। इसी का नाम पांडु हुआ।

सत्यवती ने समय आने पर एक बार अपनी बड़ी बहू अंबिका से पुनः आग्रह किया कि वह वेदव्यास से पुनः गर्भ धारण करे, परंतु अंबिका उस कालेकलूटे, विचित्र गंध वाले वेदव्यास की याद कर सत्यवती की आज्ञा नहीं मानी। उसने एक सुंदरी दासी को शृंगारित करके वेदव्यास की शय्या पर भेज दिया। उस दासी ने वेदव्यास का प्रसन्नता से आदर किया और गर्भवती हुई। उसी से समय आने पर विदुर पैदा हुए जो ज्ञानी थे। इस प्रकार वेदव्यास द्वारा अंबिका से धृतराष्ट्र, अंबालिका से पांडु और दासी से विदुर पैदा हुए। इनमें दासी–पुत्र विदुर ही ज्ञानी निकले (अध्याय –)।

मीमांसा

प्राचीन काल में यह प्रथा थी कि निस्संतान विधवा अपने देवर या अन्य से गर्भाधान कर संतान पैदा कर ले। इसको 'नियोग प्रथा' कहते थे। इस प्रथा को वैदिक माना गया है; किंतु आगे चलकर कलिवर्ज्य में जो वेद के पचपन मुद्दे हैं, यह भी आ गयी और वैदिक पंडितों ने इसका निषेध कर दिया।

मनुस्मृति (, तथा) में लिखा है कि विधवा के सहवास के लिए नियुक्त पुरुष अपनी देह में घी लगाकर एवं स्वरूप बिगाड़कर संयमपूर्वक रात्रि में सहवास करे। एक पुत्र उत्पन्न होने पर दूसरा कभी उत्पन्न न करे। नियोग का प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर दोनों पिता और पुत्रवधू की तरह संयत बरताव करें।

. शापित धर्मराज विदुर?

मांडव्य नाम के ऋषि थे। वे अपने आश्रम के प्रांगण में पेड़ के नीचे अपने हाथ उठाये तप में लीन थे। रात का समय था। चोरों ने कहीं चोरी की थी। वे चोरी का माल लेकर मांडव्य ऋषि के आश्रम पर पहुंच गये। उनके पीछे पुलिस पड़ी थी। उसी हड़बड़ी में चोर आश्रम में घुसकर छिप गये और चोरी का माल आश्रम में छिपा दिये। पुलिस आयी और मांडव्य ऋषि से पूछा–चोर चोरी का माल लेकर इधर ही आये हैं। आप बताइए, वे किधर गये? मांडव्य तो तपस्या में लीन थे। वे मौन रहे। पुलिस को मांडव्य पर संदेह हुआ। उसने आश्रम की तलाशी ली और माल सहित चोर पकड़ लिये गये। पुलिस ने चोरों के साथ मांडव्य को भी राजा के सामने प्रस्तुत किया। राजा ने सबको शूली पर चढ़ा देने

की आज्ञा दी। राजा मांडव्य ऋषि को नहीं समझ पाया।

चोर तो शूली पर चढ़ते ही मर-वर गये होंगे। मांडव्य ऋषि शूली पर बहुत दिन बैठे तप करते रहे। वे वहां भोजन न पाने पर भी मरे नहीं। उनका कष्ट देखकर मुनियों को संताप हुआ, और वे पक्षी बनकर रात में मांडव्य ऋषि के पास आये और उन्होंने उनसे पूछा कि महाराज! आपका कौन-सा पाप है जो आप शूली पर बैठाये गये? मांडव्य ने कहा कि मैं किसको दोष दूं। दूसरे किसी का दोष नहीं है। अंततः राजा ने मांडव्य ऋषि की सच्चाई जानकर उन्हें शूली से उतार दिया।

मांडव्य को शूली से उतारकर जब उनके गुदाद्वार से शूली खींची गयी तब वह पूरी नहीं निकली। इसलिए शूल का मूलभाग काट दिया गया। शूल का अग्रभाग जिसको अणी कहते हैं, वह उनके गुदा में ही रह गया। मांडव्य उसको उसी तरह लिए-लिए रहने लगे। इसलिए उनको लोग अणी मांडव्य कहने लगे।

अणी मांडव्य एक दिन धर्मराज के पास पहुंच गये और उन्होंने उनको डांटते हुए कहा कि मैंने कौन-सा पाप किया था, जो आपने मुझे ऐसा फल दिया कि मुझे शूली पर चढ़ना पड़ा? मुझे ठीक बताओ, फिर मेरी तपस्या की शक्ति देखो– *पश्य मे तपसो बलम्* (अध्याय -)।

धर्मराज ने कहा कि तुमने अपनी बारह वर्ष की अवस्था में एक पतिंगे के गुदाद्वार में सींक घुसेड़ दी थी। उसी के फल में तुम आज बिना अपराध किये ही शूली पर चढ़ाये गये हो। मांडव्य ने कहा कि बारह वर्ष की अवस्था तक तो मनुष्य अबोध रहता है। उसमें उसे पाप-पुण्य नहीं लगना चाहिए। धर्मराज, तुमने थोड़े-से अपराध का फल मुझे बहुत बड़ा दिया। याद रखो, ब्राह्मण का वध संपूर्ण प्राणियों के वध से भयंकर पाप है। अतएव ऐ धर्मराज! तुम मनुष्य होकर शूद्रयोनि में जन्म लोगे। अब मैं मर्यादा बांधता हूं कि चौदह वर्ष की उम्र तक किसी को पाप नहीं लगेगा। इसी पाप से धर्मराज शूद्रयोनि में विदुर रूप से पैदा हुए (अध्याय -)।

मीमांसा

रूढ़िवादी ब्राह्मण जब किसी तथाकथित शूद्र कुलोत्पन्न उच्च ज्ञानी तथा उच्च आचरण वाले को देखता है तब वह उसे आज नहीं तो पिछले जन्म का उच्च वर्ण वाला या देवी-देवता सिद्ध करता है। वेदव्यास से जन्माये तीन पुत्रों

में धृतराष्ट्र और पांडु से तीसरे विदुर ही ऊंचे ज्ञानी और सदाचारी थे, परंतु वे दासी शूद्रा से पैदा हुए थे। इसलिए पंडित को चिंता हुई कि वह उसे पिछले जन्म का देवता धर्मराज सिद्ध करे। इसलिए उसने उपर्युक्त मांडव्य ऋषि की असत्य कहानी गढ़ी। कहानी भी कितनी भद्दी कि मांडव्य अपने गुदा में शूली की अणी लिए-लिए घूमते रहे। उसे कोई वैद्य निकाल न सका। उनका ब्राह्मणत्व इतना कर्राया कि उन्होंने धर्मराज को शाप ही दे डाला, और अपने झूठे ब्राह्मणत्व की डींग हांक डाले–'तुम अब शूद्रयोनि में जन्मो।' कहीं शूद्रयोनि और ब्राह्मणयोनि होती है? मनुष्ययोनि होती है। बारह-चौदह वर्ष की उम्र तक पाप-पुण्य न लगे, यह भ्रम है। चार-पांच वर्ष की उम्र तक अबोध माना जा सकता है। पाप-पुण्य लगने या न लगने का बंधन या मर्यादा कोई ब्राह्मण नहीं कर सकता, अपितु प्रकृति करती है। अबोध अवस्था तक पाप-पुण्य नहीं लगते।

विदुर को धर्मराज का अभिशप्त रूप सिद्ध करने का छल लेखक को न करना चाहिए। विदुर अपने आप महान हैं। कबीर साहेब ने सच कहा है–

गुप्त प्रगट है एकै दूधा। काको कहिये ब्राह्मण शूद्रा
झूठे गर्भ भूलो मति कोई। हिंदू तुरुक झूठ कुल दोई

साखी–जिन्ह यह चित्र बनाइया, साँचा सो सूत्रधारि।
कहहिं कबीर ते जन भले, जो चित्रवंतहि लेहि निहारि

(बीजक, रमैनी)

. पांडु की राजगद्दी और धृतराष्ट्र का विवाह

धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर तीनों कुमार बड़े होने लगे। भीष्म की राज्य-व्यवस्था से कुरु वंश, कुरु जांगल देश और कुरुक्षेत्र संपन्न हो गये। वणिक, शिल्पी, शूर-वीर, विद्वान और संत सब सुखी थे। सर्वत्र 'दान दो, अतिथियों को भोजन कराओ' की आवाज आती थी। धृतराष्ट्र अधिक बलवान थे। विदुर के समान कोई उच्च धर्म की अवस्था को प्राप्त न था। *'अयं तु परमो धर्मोयद् योगेनात्मदर्शनम् (याज्ञवल्क्य स्मृति)।'* अर्थात योग द्वारा आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर लेना परम धर्म है। धृतराष्ट्र अंधे होने से और विदुर शूद्रा-पुत्र होने से राजगद्दी न पा सके, अतएव छोटे भाई पांडु को राजगद्दी

पर बैठाया गया।

भीष्म ने विदुर से राय लेकर गांधार नरेश सुबल के पास अपना दूत भेजकर धृतराष्ट्र के लिए उनकी पुत्री गांधारी की मांग की। सुबल धृतराष्ट्र को अंधा जान कर विचार में पड़ गये, किंतु अन्य योग्यताएं देखकर बात स्वीकार ली। गांधारी ने जब सुना कि मेरे संभावित पति अंधे हैं, तो उसने अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली। उसने सोचा कि मैं पति से अधिक कोई सुख नहीं लूंगी, पति का दोष नहीं देखूंगी। अंततः राजा सुबल ने अपने राजकुमार शकुनि के साथ साज-सामान सहित गांधारी को हस्तिनापुर भेज दिया। शकुनि ने अपनी बहिन गांधारी धृतराष्ट्र को समर्पित कर दी। भीष्म की राय से शकुनि ने विवाह-कार्य संपन्न किया। पश्चात, भीष्म से सम्मानित होकर शकुनि अपने देश गांधार (वर्तमान कंधार) चले गये (अध्याय -)।

. कुंती से कर्ण की उत्पत्ति

यदुवंशियों में श्रेष्ठ शूरसेन हुए जो वसुदेव के पिता थे। शूरसेन के फुफेरे भाई कुंतिभोज थे, जो संतानहीन थे। शूरसेन ने एक बार कुंतिभोज से कहा था कि जब मेरी पहली संतान होगी, तो मैं उसे आपको दे दूंगा। शूरसेन को पहली संतान पुत्री हुई। उसका नाम पृथा रखा गया। उसे उन्होंने कुंतिभोज को अर्पित कर दिया। कुंतिभोज ने जब कन्या पृथा को गोद लिया तो उसका नाम कुंती हो गया।

कुंतिभोज के यहां एक समय दुर्वासा ऋषि आये। कुंतिभोज ने युवती कुंती को उसकी सेवा में लगा दी। कुंती ने उनकी सेवा दत्तचित्त होकर की। दुर्वासा ऋषि ने उस पर प्रसन्न होकर एक वशीकरण मंत्र दिया जिसके द्वारा किसी भी देवता को बुलाया जा सकता था। दुर्वासा तो चले गये। कुंती ने कुतूहल-वश मंत्र की परीक्षा के लिए उसके द्वारा सूर्य का आवाहन किया। चमकते हुए सूर्य उसके पास आ गये। उन्होंने कुंती से कहा कि मैं तुम्हारा क्या प्रिय कार्य करूं? मैं सूर्यदेव हूं। कुंती ने क्षमा मांगी और कहा कि केवल मंत्र की परीक्षा के लिए आपका आवाहन किया था। कृपया आप लौट जायं। सूर्यदेव कुंती को मोहित करने के चक्कर में उसे तरह-तरह बात कहकर समझाने लगे और उसे सहवास करने के लिए प्रेरित करने लगे। कुंती के लाख मना करने पर भी सूर्यदेव नहीं माने और उसे गर्भवती करके छोड़े।

इस गर्भ से एक पुत्र पैदा हुआ जो कवच और कुंडल धारण किये हुए था। यही कर्ण नाम से आगे चलकर विख्यात हुआ। समस्या ने कुंती को घेर लिया। वह इस बच्चे को क्या करे; क्योंकि लोकनीति के विरुद्ध था। अतएव उसने बच्चे को जल में फेंक दिया। उस नवजात शिशु को सूत-पुत्र अधिरथ ने पाया। उसने उसे अपनी पत्नी राधा को दे दिया। राधा ने उसे अपना पुत्र मान कर पाला। कर्ण बड़ा होने पर अस्त्र-शस्त्र विद्या का अभ्यास किया और वीर हुआ।

एक दिन इंद्र ब्राह्मण बनकर कर्ण के पास आये और उन्होंने भिक्षा में कर्ण से उसके कवच और कुंडल मांगे। कर्ण दानी थे। उन्होंने अपने शरीर के जन्मजात कवच को शरीर से उखाड़कर और कुंडल काटकर इंद्र को दे दिया। किंतु कर्ण को इंद्र ने एक बरछी दी जिसके प्रयोग से सबको जीता जा सकता था।

सूर्य ने अपने पुत्र कर्ण को पहले सावधान किया था कि इंद्र ब्राह्मण बनकर तुम्हारे पास भिक्षा मांगने आयेगा और वह तुम्हारे कवच और कुंडल मांगेगा, परंतु तुम उसे मत देना। इस पर कर्ण ने कहा था कि ब्राह्मण के मांगने पर मैं न नहीं कर पाऊंगा। तब सूर्य ने कहा था कि इंद्र तुम्हारे कवच और कुंडल पा जाने पर प्रसन्न होकर तुम्हें वर देंगे। उसके उपलक्ष्य में तुम उनसे बरछी मांग लेना जो समस्त अस्त्र-शस्त्रों का निवारण करने वाली होगी। कर्ण ने इंद्र से वर के रूप में उनसे बरछी मांग ली थी। कर्ण को पहले वसुषेण नाम से पुकारा जाता था। जब उन्होंने अपने शरीर से कवच और कुंडल को कतर कर इंद्र को दान दे दिया, तब से उनका नाम कर्ण हो गया (अध्याय)।

मीमांसा

कुंतिभोज ने अपनी युवती पुत्री कुंती को आगंतुक ब्राह्मण की सेवा में लगा दिया। ब्राह्मण देवता एक वर्ष (वन पर्व ,) कुंतिभोज के यहां ठहरे। उन ब्राह्मण देवता ने ही कुंती को गर्भवती किया। पर-स्त्री-पुरुष का घनिष्ठ संबंध खतरे से खाली नहीं रहता। कुंती ब्राह्मण देवता से गर्भवती हो गयी थी, तो उसे साहसपूर्वक नवजात बच्चे को स्वीकारना चाहिए था, परंतु उसकी साहस-हीनता ने बच्चे को नदी में फेंकवा दिया।

कुंती और ब्राह्मण देवता के संबंध को छिपाने के लिए भारी भरकम तथा प्रसिद्ध नाम लिया गया कि वह ब्राह्मण दुर्वासा थे। वे केवल वशीकरणमंत्र कुंती

को बताये थे। कुंती को सूर्य देवता ने गर्भवती किया था। क्या पृथ्वी से तेरह लाख गुना बड़ा दहकता हुआ आग का जड़ पिंड सूर्य आकर कुंती को गर्भवती करेगा? दुर्वासा श्रीराम के समय में हैं और कुंतिभोज के समय में भी हैं। यह कैसा चमत्कार है? वसिष्ठ, विश्वामित्र, दुर्वासा आदि और सर्वाधिक नारद पुराण-लेखक पंडितों के मोहरा (दावं) हैं, जिन्हें वे कहीं भी ठोंकते रहते हैं और उलटी-सीधी बातें सिद्ध करने के चक्कर में पड़े रहते हैं।

कर्ण के शरीर में कवच और कुंडल माता के गर्भ में ही जड़ गये थे, इसलिए वे उनके सहित पैदा हुए थे, यह अस्वाभाविक कथन कर्ण की मिथ्या महिमा बढ़ाने के लिए है। ऐसा होना सर्वथा असंभव है। मनुष्य पैदा होने के बाद बड़ा होने पर कवच-कुंडल आदि पहनता है।

. पांडु का कुंती तथा माद्री के साथ विवाह

राजा कुंतिभोज ने कुंती के लिए स्वयंवर सभा बुलायी। कुंती ने पांडु का वरण किया। कुंती पांडु के राजभवन हस्तिनापुर आ गयी। इसके बाद भीष्म की इच्छा हुई कि पांडु के लिए एक दुलहिन और लायी जाय। वाह्लीक (आज का बलख) जिसे वाहीक भी कहते हैं, उस देश के राजा शल्य की बहिन माद्री थी। उसकी प्रशंसा भीष्म ने सुन रखी थी। शल्य के देश को मद्र भी कहते थे। उनकी बहिन देश के नाम से ही माद्री जानी जाती थी। वे अपने पंडित-पुरोहित तथा मंत्रियों को लेकर वाहीक पहुंचे। शल्य ने भीष्म का स्वागत किया, और आने का उद्देश्य पूछा। भीष्म ने बताया कि हम आपकी बहिन अपने भाई पांडु के लिए चाहते हैं। शल्य ने कहा कि बड़ी प्रसन्नता है। पांडु से श्रेष्ठ वर हमें कहां मिलेगा, परंतु मेरे कुल में पूर्व के राजाओं ने कुछ शुल्क लेने का नियम चला रखा है, वह भला हो या बुरा, मैं उसका उल्लंघन नहीं कर सकता। यह सब जानते हैं। संभवतः आप भी जानते होंगे। ऐसी स्थिति में आपका यह कहना कि आप मुझे कन्या दे दो, उचित नहीं है।

भीष्म ने कहा-मद्रराज! यह उत्तम धर्म है। ब्रह्मा जी ने भी इसका समर्थन किया है। इसको आपके पूर्वजों ने माना है, तो हमें इस पर कोई आपत्ति नहीं है। आपकी यह कुल-मर्यादा हम जानते हैं। इसके बाद भीष्म राजा शल्य को बहुत-से सोने, चांदी, हाथी, घोड़े, रथ आदि समर्पित कर उनकी बहिन माद्री को लेकर हस्तिनापुर लौटे और राजभवन में पांडु-माद्री का विधिवत विवाह हो गया (अध्याय -)।

. राजा पांडु की दिग्विजय

राजा एक महीना तक अपनी पत्नियों के पास रंगमहल में रहकर दिग्विजय की इच्छा से फौज–फक्कड़ के साथ बाहर निकले। उन्होंने भीष्म, धृतराष्ट्र तथा अन्य बूढ़े–बड़ों से आज्ञा लेकर तथा उनको सिर झुकाकर दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया।

वे पहले दशार्णों पर हमला किये। विंद पर्वत के पूर्व–दक्षिण स्थित देश का पुराना नाम दशार्ण था जिससे होकर धसान नदी बहती है। विदिशा इसी देश की राजधानी थी। यहां के राजा को हराकर तथा उनसे धन लेकर मगध पर हमला किये। मगधराज दीर्घ को राजा पांडु ने मारकर उनके राज्य को अपने कब्जे में कर लिया। वहां से बहुत–सा धन लेकर राजा पांडु उत्तर मुड़ गये और मिथिला पर धावा बोले। उन्होंने विदेहवंशी क्षत्रियों को परास्त किया। उसके बाद राजा पांडु ने काशी, सुह्म और पुंड्र देशों पर विजय किया। पांडु ने अपनी सेना के बाणों और तलवारों की लपटों में शत्रुओं की सेना को नष्ट कर उन सभी राजाओं को अपने अधीन कर लिया। राजा पांडु की सर्वत्र तूती बोलने लगी। विजित राजाओं से पाये हुए मणि, मोती, मूंगे, सोने, चांदी, गौ, अश्व, रथ, हाथी, गधे, ऊंट, भैंसे, बकरे, भेड़ें, कंबल, मृगचर्म, रत्न, रंकु मृग के चाम से बने बिछौने आदि लेकर राजा पांडु फौज–फक्कड़ सहित हस्तिनापुर पहुंचे।

यह सब देखकर भीष्म आदि का हर्षित होना स्वाभाविक है। कौरव–वंश की कीर्ति–पताका फहराने लगी (अध्याय)।

मीमांसा

अहंकारी राजा यही काम सब समय करते आये हैं। लड़ाई वर्ग की नहीं है, अपितु सत्ता की लोलुप्ता की है। विदिशा, मगध, मिथिला, काशी, पुंड्र आदि जिन पर राजा पांडु ने हमला कर निरपराधों का रक्त बहाया और उन्हें लूटा, वे भिन्न वर्ग के नहीं थे। भिन्न वर्ग के लोग भी स्वतंत्र जीने के अधिकारी हैं। यही लड़ने की प्रवृत्ति एक दिन आपस में लड़ाकर मारती है। हिंसा से हिंसा बढ़ती है। दूसरों को दुख देने वाला स्वयं सुख से नहीं सो सकता। एक राजा दूसरे राजा पर हमला न करके अपने–अपने देश की भौतिक–सांस्कृतिक उन्नति करते तो कितना अच्छा होता। परंतु अहंकार और सत्ता–लिप्सा अनर्थ कराती है। तिस पर अहंकारी तुर्रा है–दिग्विजय! परंतु ध्यान रहे, क्रूर दिग्विजय की आवश्यकता नहीं है जो सबको जलाने वाली है, अपितु अहिंसा–शांति की आवश्यकता है जो प्राणिमात्र के लिए अत्यंत सुखद है।

. विदुर का विवाह और उनके तथा धृतराष्ट्र के पुत्रों का जन्म

भीष्म ने सुना कि राजा देवक के यहां एक कन्या है जो ब्राह्मण द्वारा शूद्र जातीय कन्या से उत्पन्न की गयी है। वह सुंदरी और सुशीला है। भीष्म ने उन राजा से उस कन्या को मांग लाया और उससे विदुर का विवाह हुआ। विदुर द्वारा उस स्त्री से अनेक विनयशील पुत्र उत्पन्न हुए (अध्याय)।

एक दिन वेदव्यास आये और उन्होंने गांधारी को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे गर्भ से सौ पुत्र पैदा होंगे। इसके बाद गांधारी ने धृतराष्ट्र से गर्भधारण किया। गर्भधारण किये गांधारी को दो वर्ष बीत गये, किन्तु बच्चा पैदा न हुआ। इसी बीच गांधारी ने सुना कि कुंती को प्रथम पुत्र पैदा हुआ है और वह बहुत तेजवान है। गांधारी को दुख हुआ। अतएव उसने गर्भ पर चोट करके उसे पैदा करने का प्रयत्न किया। उसके गर्भ से मांस का एक पिंड निकला जो लौह के समान कठोर था। गांधारी उसे फेंक देना चाहती थी। इतने में वेदव्यास आ गये। उन्होंने गांधारी से कहा–तुम इसे क्या करना चाहती थी? गांधारी ने कहा– फेंकना चाहती थी।

वेदव्यास ने गांधारी को इस काम से रोका। उन्होंने उस मांस-पिंड को शीतल जल में डलवा दिया। फिर उस मांस-पिंड के एक सौ एक टुकड़े हो गये। उन्हें घी के सौ घड़ों में डलवाकर छिपाकर रखवा दिया। दो वर्ष तक उन घड़ों को बंद रखा गया। उसके बाद एक घड़ा का मुंह खोला गया तो उसमें से दुर्योधन का जन्म हुआ। वह जन्मते ही गधे की तरह चिघ्घारने लगा। उसकी आवाज सुनकर दूसरे गधे भी चिघ्घारने लगे। फिर तो गीध, गीदड़, कौए कोलाहल करने लगे। इतना होकर ही बंद नहीं हुआ, अपितु जोर की आंधी चली और सभी तरफ जलन होने लगी। धृतराष्ट्र भयभीत हो गये। उन्होंने ब्राह्मणों, भीष्म, विदुर आदि को बुलाकर कहा कि पांडु का पुत्र युधिष्ठिर राजा बनने योग्य होगा। उसके विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है; परंतु क्या यह मेरा ज्येष्ठ पुत्र भी राजा हो सकेगा?

लोगों ने कहा कि आपका ज्येष्ठ पुत्र अशुभ लक्षण वाला है। आप इसे त्याग दें तो अच्छा है। शेष निन्नानबे पुत्र काफी हैं। नीति कहती है कि समूचे कुल के हित के लिए एक का त्याग कर दे, गांव के हित के लिए कुल का त्याग कर दे, देश के हित के लिए गांव का त्याग कर दे और आत्मा के कल्याण के लिए संसार का त्याग कर दे। किंतु पुत्रमोह में पड़कर धृतराष्ट्र दुर्योधन का

त्याग नहीं कर सके। अंततः निन्नानबे पुत्र भी घड़े से निकलकर प्रकट हो गये। सौ पुत्रों के अतिरिक्त एक पुत्री भी पैदा हुई जिसका नाम दुःशला रखा गया। गांधारी का मन एक पुत्री के लिए भी था, वह पूरा हुआ। कहा जाता है कि स्त्रियां पुत्र से अधिक दामाद का प्यार करती हैं।

जब गांधारी गर्भवती थी, उस समय राजा धृतराष्ट्र की सेवा में एक वैश्य–स्त्री रहती थी। उसी समय वह धृतराष्ट्र से गर्भवती हो गयी थी। उससे जो बच्चा पैदा हुआ, उसका नाम युयुत्सु हुआ। इस प्रकार राजा धृतराष्ट्र के सौ पुत्र, एक पुत्री और वैश्य–स्त्री से युयुत्सु–सब एक सौ दो संतान हुए। युयुत्सु महायशस्वी तथा प्रतापवान हुए। इसके बाद एक सौ सोलहवें अध्याय में धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों के नाम बताये गये हैं (अध्याय –)।

मीमांसा

आशीर्वाद से पुत्र पैदा होना धोखे की बात है। गांधारी के गर्भ में दो वर्ष मांस–पिंड का रहना, पेट से निकलने पर पानी में डालने से उसके एक सौ एक टुकड़े होकर और घी के घड़े में दो वर्ष पल कर पुत्र–पुत्री के रूप में पैदा होना अपने आप स्पष्ट है कि यह अस्वाभाविक गढ़ी गयी असत्य कहानी है। पंडित यह सब लिखने में संकोच नहीं करता है।

दुर्योधन के पैदा होते ही उसका गधे के समान चिघ्घारना और फिर अन्य गधों आदि का बोलना, आंधी, गरमी आना दुर्योधन को गाली देने के लिए योजना है जो अस्वाभाविक है। जब पंडितों को अस्वाभाविक सौ पुत्रों और एक पुत्री को पैदा करने में संकोच नहीं लगा, तो सौ पुत्रों के नाम की कल्पना करने में क्या लगता है। वह तो सहज ही है। वस्तुतः राजा धृतराष्ट्र के दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण, युयुत्सु आदि कुछ ही पुत्र हो सकते हैं।

. पांडु का संन्यास–कथन, फिर वानप्रस्थी बनकर पांडवों की उत्पत्ति का उपाय

पांडु वन में थे। शिकारी थे ही। एक मृग–मृगी के जोड़ा को उसके रति–काल में बाणों से मार दिया। वे मुनि थे जो मृगरूप धारणकर अपनी मृगी–पत्नी के साथ थे। उन्होंने पांडु को शाप दिया कि तुम पत्नी–सहवास के कारण मरोगे।

. पांडु का संन्यास-कथन, फिर वानप्रस्थी बनकर पांडवों की उत्पत्ति का उपाय

राजा पांडु को पश्चाताप हुआ। वे संन्यास लेने के लिए प्रलाप करने लगे– मेरे पिता विचित्रवीर्य काम-भोग के कारण थोड़ी उम्र में मर गये। मैं शिकार के पीछे दौड़ता रहता हूं। मेरी बुद्धि नीच हो गयी है। स्त्री-पुत्रादि का मोह ही सबसे बड़ा दुखद बंधन है। मैं मूड़ मुड़ाकर संन्यासी हो जाऊंगा। वृक्ष के नीचे रहूंगा, फल-मूल से निर्वाह करूंगा या सात घर में भोजन मांगकर खा लूंगा, उपवास रह लूंगा। मेरी एक बांह कोई बसुले से काटे और दूसरी बांह पर चंदन छिड़क कर उसकी पूजा करता हो, मैं उन दोनों के प्रति समान भाव से रहूंगा। मैं संतान-उत्पत्ति की शक्ति से हीन हूं। वीर्यक्षय से मेरी दशा शोचनीय है। मैं इस दीनतापूर्ण मार्ग पर नहीं चल सकता।

पांडु ने कुंती तथा माद्री की ओर देखकर कहा–देवियो! अब तुम हस्तिनापुर लौट जाओ। माता अंबिका, अंबालिका, भाई विदुर, राजपुरोहित आदि से कह देना कि राजा पांडु संन्यासी होकर वन में चले गये।

माद्री और कुंती ने पांडु से कहा कि यदि आप संन्यासी होंगे तो हम अपने प्राण अभी खो देंगी। संन्यास के अलावा वानप्रस्थ का मार्ग है जिसमें हम लोगों का भी निर्वाह है। हम सब इंद्रिय-संयमपूर्वक रहकर तप करेंगी।

अंततः पांडु, कुंती तथा माद्री अपने राजशाही वस्त्र तथा आभूषण सेवकों को देकर हस्तिनापुर भेज दिये और कह दिये कि तुम जाकर राजा धृतराष्ट्र से कह देना कि पांडु कुंती-माद्री सहित वानप्रस्थी हो गये हैं। धृतराष्ट्र जब यह सब सुने तो बहुत दुखी हो गये; और वे यही बात हरक्षण सोचते रहते थे।

पांडु अपनी दोनों पत्नियों के साथ नागशत नामक पर्वत पर चले गये। फिर चैत्ररथ वन जाकर कालकूट और हिमालय पर्वत को पार करके गंधमादन पर्वत पर चले गये। वे ऊंची-नीची जमीन पर सो लेते थे। वे इंद्रद्युम्न सरोवर पर पहुंचकर तथा हंसकूट लांघते हुए शतशृंग पर्वत पर पहुंच गये। वहां वे तपस्या में लीन हो गये।

वहां के ऋषि लोग कहीं जाने की तैयारी कर रहे थे। पांडु ने पूछा कि आप लोग कहां जाना चाहते हैं? ऋषियों ने कहा कि ब्रह्मलोक में महात्मा, देवताओं, ऋषि-मुनियों और पितरों का बड़ा भारी सम्मेलन होने वाला है। हम सब वहीं जायेंगे और ब्रह्मा जी का दर्शन करेंगे। यह सुनकर पांडु भी उनके साथ ब्रह्मलोक के लिए चल दिये। उत्तर दिशा को चलना था। मुनियों ने पांडु को समझाया कि रास्ता बड़ा दुर्गम है। गहरी घाटियां हैं। ऐसे स्थल हैं जहां हर समय बर्फ जमी रहती है। वहां न प्राणी हैं न वनस्पति। ये रानियां वहां न चल सकेंगी।

पांडु ने ऋषियों से कहा–महाराज! संतानहीन मनुष्य के लिए स्वर्ग का दरवाजा बंद रहता है। मैं संतानहीन हूं इसलिए चिंता से जल रहा हूं। ऋषियों ने कहा कि हम अपनी दिव्य दृष्टि से देखते हैं कि तुम्हें उत्तम संतान होगी। तुम्हें इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए– *राजन् प्रयत्नं कर्तुमर्हसि (अ. ,)*।

ऋषियों की उपर्युक्त बात सुनकर राजा पांडु ने कुंती से एकांत में कहा– संतान न होने से मुझे शुभलोकों की प्राप्ति नहीं होगी। मैं इसी चिंता में डूबा रहता हूं। ध्यान दो! छह 'बंधुदायाद' हैं और छह 'अबंधुदायाद' हैं। बंधुदायाद वे हैं जो अपने कुटुंब के होने से संपत्ति के अधिकारी होते हैं और अबंधुदायाद वे हैं जो कुटुंबी न होने पर भी संपत्ति के अधिकारी होते हैं। जो विवाहिता पत्नी से उत्पन्न किया गया है, वह 'स्वयं–जात' अपना पुत्र है। दूसरा 'प्रणीत' है, जो अपनी ही पत्नी के गर्भ से दूसरे उत्तम पुरुष के अनुग्रह से पैदा किया गया है। तीसरा वह है जो अपनी पुत्री का पुत्र हो जिसे दौहित्र या नाती कहा जाता है। चौथे प्रकार के पुत्र को 'पौनर्भव' कहते हैं जो दूसरी बार ब्याही हुई पत्नी से पैदा हुआ है। पांचवें प्रकार के पुत्र को 'कानीन' कहते हैं। विवाह के पहले ही जिस कन्या को इस शर्त के साथ दिया जाता है कि इसके गर्भ से उत्पन्न होने वाला पुत्र मेरा पुत्र समझा जायेगा, वह 'कानीन' कहलाता है। बहिन का पुत्र 'भानजा' छठां पुत्र कहलाता है। ये सब 'कुटुंबदायाद' हैं। ये अपने कुटुंब के हैं और संपत्ति के अधिकारी हैं। इसके अलावा छह प्रकार 'अबंधुदायाद' पुत्र कहलाते हैं। पहला 'दत्त' है, जिसे माता–पिता ने स्वयं समर्पित कर दिया हो। दूसरा 'क्रीत', है जिसे धन देकर खरीद लिया गया हो। तीसरा 'कृत्रिम' है, जो आपका पुत्र हूं ऐसा कहकर स्वतः समर्पित हो गया हो। चौथा 'सहोढ' कहलाता है। जो कन्यावस्था में ही गर्भवती होकर ब्याही गयी हो, उसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र 'सहोढ' है। पांचवा 'ज्ञातिरेता' है जो अपने कुल का पुत्र है। छठां वह है जो अपने से हीन जाति में उत्पन्न पुत्र है। इनमें पूर्व–पूर्व के अभाव में उत्तर–उत्तर की इच्छा करे। आपत्ति काल में नीची जाति के पुरुष से भी पुत्र–उत्पत्ति की इच्छा कर सकते हैं। अपने वीर्य के बिना भी मनुष्य किसी श्रेष्ठ पुरुष के संबंध से श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त कर लेते हैं। वह धर्म का फल देने वाला होता है। इस बात को स्वयंभुव मनु ने कहा है। अतएव हे कुंती! मैं संतान–उत्पन्न करने की शक्ति से रहित हूं। इसलिए मैं तुम्हें आज दूसरे पुरुष के पास भेजूंगा। तुम मेरे समान अथवा मुझसे श्रेष्ठ पुरुष से संतान पैदा करो (अध्याय , –)।

कुंती ने कहा–आप इस तरह मुझसे न कहें। मैं आपकी धर्मपत्नी हूं। मैं आपके अलावा किसी दूसरे पुरुष के साथ समागम करने की बात भी नहीं सोच सकती हूं– *न ह्यहं मनसाप्यन्यं गच्छेयं त्वदृते नरम्* (, ,)।

. पांडु का संन्यास-कथन, फिर वानप्रस्थी बनकर पांडवों की उत्पत्ति का उपाय

पांडु ने कुंती को समझाना शुरू किया–यह पुरातन धर्म मैं तुम्हें बताता हूं जिसे ऋषियों ने निर्देशित किया है। पति अपनी पत्नी से जो कुछ कहे, वह जैसा हो उसे करना चाहिए। ऐसा वेदज्ञाता कहते हैं। ऐसा व्यक्ति जो पुत्र की इच्छा वाला है और स्वयं पुत्र पैदा करने में असमर्थ है, तो उसकी बात पत्नी को अवश्य मानना चाहिए। मैं पुत्र का मुंह देखने के लिए लालायित हूं, अतएव मैं हाथ जोड़कर कहता हूं, कि तुम मेरी आज्ञा से तपस्या में लीन ब्राह्मण के साथ समागम करके गर्भ धारण करो और गुणवान पुत्र उत्पन्न करो। मेरी अभिलाषा है कि मैं तुम्हारे प्रयत्न से पुत्रवानों की गति प्राप्त करूं।

इसके बाद कुंती ने बताया कि जब मैं पिता जी के यहां थी, दुर्वासा ऋषि के द्वारा मुझे वशीकरण मंत्र मिला था। मैं उसके द्वारा किसी भी देवता को बुलाकर उनसे गर्भ धारण कर सकती हूं और आपकी पुत्र-कामना पूरी हो सकती है। पांडु इतना सुनकर प्रसन्न हो गये।

इसके बाद कुंती ने अपने वशीकरण मंत्र द्वारा धर्म को बुलाकर उनसे युधिष्ठिर को, वायु को बुलाकर उनसे भीम को और इंद्र को बुलाकर उनसे अर्जुन को पैदा किया। इसके बाद पांडु चौथे-पांचवें पुत्र के लोभ से कुंती से कुछ कहना चाहते थे, किंतु कुंती ने उनको रोक दिया कि अब बस।

माद्री ने पांडु से कहा कि गांधारी के पुत्र हुए, कुंती के हुए, मैं सूनी हूं। मैं कुंती से कह नहीं सकती कि वे मेरे लिए किसी देवता को बुला दें, क्योंकि सौत होने के कारण मेरे मन में अभिमान है। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे लिए कुंती देवी से कहिए कि वे मेरे लिए किसी देवता को बुला दें। पांडु ने कहा–माद्री! मेरे मन में यह बात सदैव घूमती रहती है, किंतु तुमसे संकोचवश नहीं कह पाता था कि तुम बुरा न मान जाओ। किंतु मैं अब कुंती से कहूंगा और मुझे विश्वास है कि वह मेरी बात मानेगी। इसके बाद कुंती से पांडु ने कहा कि माद्री को भी नाव पर बैठाकर पार लगा दो। कुंती ने माद्री से कहा कि तुम एक बार किसी देवता का स्मरण करो। वह अवश्य तुम्हारे पास आयेगा और तुम्हें संतान मिलेगी। माद्री ने अश्विनीकुमारों का स्मरण किया। उनसे जो गर्भ रहा, उससे माद्री को जुड़वे पुत्र-नकुल और सहदेव पैदा हुए। इसके बाद पांडु ने कुंती से कहा कि माद्री के लिए और प्रयत्न करो। इससे और भी पुत्र पैदा हों। कुंती ने कहा–"ना दादा, अब बहुत हो गया। मैंने तो माद्री के लिए एक पुत्री की कल्पना की थी, परंतु उसने अश्विनीकुमारों को बुलाकर जुड़वा पुत्र पैदा कर लिया। इससे मेरा तिरस्कार हुआ। अब बस।" युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव पांचों पांडव पढ़-लिखकर अस्त्र-शस्त्र विद्या में निष्णात हो गये (अध्याय -)।

मीमांसा

मुनि अपनी पत्नी के साथ मृग–मृगी बनकर सहवास कर रहे थे, अपने आप मिथ्या कथा है। पांडु ने उन्हें शिकार रूप में मारा, किंतु वे मुनि निकले और उनके शाप से पांडु नपुंसक हो गये। यह वर–शाप का झूठा प्रपंच पौराणिक पंडितों की अनगढ़ कल्पनाएं हैं। पांडु स्वयं रोगी और नपुंसक थे।

पांडु को राजधानी में एवं राजभवन में रहकर अपनी रानियों से नियोग द्वारा संतान पैदा कराने में संकोच लगा, अतएव वानप्रस्थ होने के बहाने दोनों रानियों के साथ वन में चले गये जहां ब्राह्मण लोग मनन–चिंतन में रहते थे। पांडु अपनी रानियों के साथ नागशत, कालकूट, हिमालय पार करके गंधमादन पर्वत पर चले गये, और स्वर्ग जाने वाले ऋषियों के साथ स्वर्ग जाने के लिए तत्पर हो गये, परंतु रास्ता दुरूह–बर्फीला तथा ऊबड़–खाबड़ होने से ऋषियों द्वारा रोक दिये गये। मानो हिमालय के बाद तिब्बत ही स्वर्गलोक था। यह सब कथन केवल ताम–झाम है, दिखावा है। स्वर्ग बाहर कहीं नहीं है।

वस्तुतः पांडु ने ऋषियों से अपनी पुत्र–कामना प्रस्तुत की। उन ब्राह्मणों ने स्वीकार किया, और उन्हीं से वन में रहते–रहते समय–समय पर कुंती और माद्री को सब मिलाकर पांच पुत्र पैदा हुए। वशीकरण मंत्र असत्य है और उसके द्वारा बुलाये जाने वाले देवता काल्पनिक हैं।

नियोग प्रथा का समय था। नियोग द्वारा पांचों पांडव पैदा किये गये, इसमें क्या बुरा है? वस्तुतः नियोग से तो सब पैदा होते हैं। एक रजिस्टर्ड नियोग से और दूसरा अनरजिस्टर्ड नियोग से। नियोग का अर्थ ही है, लगना, जुड़ना। मनुष्य के समान कोई देवता नहीं होता। मनुष्य सर्वोच्च देवता है। देवता की झूठी कल्पना गढ़कर मनुष्य का मूल्य घटाया जाता है जो अपराध है।

जिसको पुत्र नहीं होता है उसको स्वर्ग नहीं मिलता है। पुत्र पैदा होता है, वह पिता के मरने पर उसके नाम से पिंडदान करता है तब पिता स्वर्ग जाता है। पुत्र का अर्थ ही कर डाला गया–"पुत् नामक नरक से जो पिता को पार लगाता है, वह पुत्र है, ऐसा स्वायंभुव मनु ने कहा है।" इसलिए पुत्र शब्द का शुद्ध रूप है 'पुत्रः'। संस्कृत भाषा में संतान या पुत्र को 'अपत्य' भी कहा गया

. **पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात् त्रापते पितरं सुतः।**
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा मनु० ,

है, और उसकी परिभाषा की गयी है– *'न पतन्ति पितरोऽनेन'* जिसके द्वारा पिता का पतन न हो वह अपत्य है। यह ठीक है कि पुत्र अच्छे गुणों वाला हो तो पिता को प्रसन्नता होती है; परंतु उसके पिंडदान करने पर पिता स्वर्ग में जाता है, यह पुरोहितों की धंधेबाजी है। मन का मैल नरक है और उसकी निर्मलता स्वर्ग है; और यह हर व्यक्ति की अपनी जिम्मेदारी है कि वह अपना मन शुद्ध करे। हम अपने को स्वयं नरक से तारने वाले हैं। बड़े-बूढ़े, संत-गुरु इसके लिए केवल निर्देश कर सकते हैं।

. राजा पांडु की मृत्यु, पांडवों का हस्तिनापुर आगमन

कुंती आगत अतिथियों के स्वागत में लगी थी। पांडु काम-मोहित हो माद्री को अपने साथ बुला लिए। एकांत पाकर उसको अपनी बांहों में कस लिए। माद्री जानती थी कि राजा रोगी हैं, इनकी मृत्यु रखी-रखायी है। उसने अपने को छुड़ाने का प्रयत्न किया, परंतु छूट न सकी। परिणाम में राजा पांडु की मृत्यु हो गयी। कुंती दौड़ी आयी। विलाप करने लगी। कुंती राजा से सदैव अपने को बचाकर रखती थी। अंततः माद्री ने पांडु की लाश के साथ अपना दारुण आत्म दाह कर लिया। उसके पहले उसने कुंती से मात्र इतना ही कहा कि अपने पुत्रों के समान नकुल-सहदेव की देख-भाल रखियेगा। (अध्याय)।

वन के ऋषियों ने कुंती सहित पांचों पांडवों को हस्तिनापुर आकर राजा धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर आदि के समक्ष प्रस्तुत कर उन बच्चों का परिचय कराया, और पांडु तथा माद्री का भस्मावशेष दिया। ऋषि लोग अपने आश्रम चले गये। हस्तिनापुर में बारह दिन तक शोक मनाया गया। इसी बीच वेदव्यास जी आ गये। उन्होंने सत्यवती से कहा–माता! सुख के दिन बीत गये। भयंकर समय आने वाला है। उत्तरोत्तर बुरे दिन आने वाले हैं, पृथ्वी ने जवानी छोड़ दी है। तुम अपनी बहुओं को लेकर वन में तप करने चली जाओ। वेदव्यास की बात स्वीकार कर सत्यवती अपनी दोनों विधवा बहुओं–अंबिका और अंबालिका को लेकर वन में चली गयीं, और तप करते हुए उन तीनों ने वन में ही शरीर छोड़े (अध्याय -)।

. बच्चों की क्रीड़ा और ईर्ष्या-द्वेष

पांचों पांडव तथा धृतराष्ट्र के पुत्र एक जगह खेलते, जलक्रीड़ा करते, धूल उछालते, एक-दूसरे को धकियाते। इन सभी बच्चों में भीम अधिक बलवान थे। उसके प्रति दुर्योधन को ईर्ष्या हो गयी। उसने एक दिन भीम के भोजन में

विष मिलवा दिया। भीम के शरीर में विष व्याप्त हो गया। दुर्योधन ने स्वयं लताओं में भीम को बांधकर गंगा नदी में ढकेल दिया। भीम गंगा में गिरने से नागलोक चले गये। वहां नागों ने उन्हें कुंड में भरे रस को पीने की बात कही। भीम ने आठ कुंड का रस पी लिया और उनको दस हजार हाथी का बल हो गया। भीम आठ दिनों के बाद स्वजनों में आये। भीम ने युधिष्ठिर से दुर्योधन की कुचाल की बात बतायी। युधिष्ठिर ने कहा–"बिलकुल चुप हो जाओ। इस बात को किसी से कभी नहीं कहना।" इसके बाद पांडव युधिष्ठिर के निर्देश से पूर्ण सावधान रहने लगे। दुर्योधन ने भीम के प्रिय सारथि का गला घोटकर मार डाला। इसमें भी विदुर ने पांडवों को सलाह दी कि वे चुपचाप सह लें। दुर्योधन, कर्ण, शकुनि अनेक उपायों से पांडवों को मार डालना चाहते थे। विदुर की सम्मति पाकर पांडव अपना क्रोध मारकर रह जाते थे। धृतराष्ट्र ने बच्चों की उद्दंडता देखकर उन्हें द्रोणाचार्य के गुरुकुल में शिक्षा लेने के लिए भेजा (अध्याय –)।

मीमांसा

विषयासक्ति के कारण अनेक विकार उत्पन्न होते हैं। भोग और अधिकार की लालसा सारा पाप कराती है और ईर्ष्या, क्रोध, हत्या ये सब आते हैं। भोग और प्रतिष्ठा की लालसा जितनी तीव्र होती जाती है, मनुष्य उतना अधिक पाप में लगता है। भीम का गंगा में गिरकर नागलोक में चला जाना और आठ कुंडों का रस पी लेना तथा उससे उन्हें दस हजार हाथियों का बल हो जाना मिथ्या महिमा–कथन है। ऐसा वर्णन मनुष्य का अज्ञान बढ़ाता है; क्योंकि यह सब केवल कवि–कल्पना है।

. कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा की उत्पत्ति

गौतम के पुत्र शरदवान थे। शरदवान को शरदवान गौतम कहा जाता था। उनका मन अस्त्र–शस्त्र विद्या में जितना लगता था, वेदाध्ययन में नहीं। वे धनुर्वेद में पारगत थे और उग्र तपस्वी थे। इंद्र शरदवान गौतम से डर गया। उसने जानपदी नाम की एक सुंदरी अप्सरा को शरदवान गौतम को पतित करने के लिए भेजा। उस युवती के समान संसार में अन्य कोई सुंदरी नहीं थी। उसे देखकर शरदवान गौतम की दशा खराब हो गयी। वे काम–मोहित हो गये। उनके हाथ से धन्वा–बाण छूट गये। उनके शरीर में कंप हो गया, किंतु वे अपनी मर्यादा में बने रहे और उस अप्सरा से दूर रहे, किंतु उनका वीर्य स्खलित होकर

सरकंडे के समूह पर गिर पड़ा। शरदवान गौतम वहां से चले गये। वह वीर्य दो भागों में बंट गया। वीर्य के उन दोनों भागों से एक लड़की तथा एक लड़का पैदा हुआ। राजा शांतनु संयोग से शिकार के लिए गये थे। वे उन बच्चों को उठाकर साथ ले आये। उन्हें कृपापूर्वक पाला, इसलिए लड़की का नाम कृपी और लड़के का नाम कृप रखा।

ये कृप ही कृपाचार्य कहलाये जो अस्त्र-शस्त्र विद्या में निपुण थे। इनसे कौरव, पांडव और यादवों ने अस्त्र-शस्त्र विद्या का अध्ययन और परीक्षण सीखा, किंतु भीष्म ने आगे चलकर अपने कुल के युवकों को अधिक शिक्षित करने के लिए द्रोणाचार्य की खोज की। उनके चरणों में पांडवों और कौरवों को समर्पित कर दिया। द्रोणाचार्य ने उन्हें पूर्ण रूप से युद्ध-विद्या में निपुण कर दिया।

द्रोणाचार्य की उत्पत्ति कैसे हुई, इसकी चर्चा इसी चलती कथा में आती है। गंगाद्वार (संभवतः हरिद्वार) में भरद्वाज नाम के एक ऋषि थे। वे एक दिन गंगा में जब स्नान करने गये, तब वहां घृताची नाम की अप्सरा को देखकर काम-वासना के वश हो गये, फलतः उनका वीर्य स्खलित हो गया तो उसको उन्होंने एक द्रोण (पात्र) में रख दिया। उससे एक बच्चा पैदा हुआ। द्रोण से पैदा होने से उसका नाम द्रोण ही रखा गया जो आगे चलकर द्रोणाचार्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। सरकंडे पर पैदा हुई कृपी नाम की कन्या द्रोण की पत्नी हुई जिससे अश्वत्थामा नाम का बच्चा पैदा हुआ। यह इसलिए अश्वत्थामा कहलाया, क्योंकि यह जन्मते ही अश्व की तरह से चिल्लाया था।

उन दिनों पृषत नाम के राजा थे जिनका पुत्र द्रुपद हुआ। यह द्रुपद भरद्वाज के आश्रम जाकर द्रोण के साथ खेलता था। द्रोण और द्रुपद दोनों मित्र रूप में रहकर भरद्वाज के आश्रम में शिक्षा पाये। पृषत राजा के मर जाने पर उनके पुत्र द्रुपद पांचाल-राज्य की गद्दी पर बैठे। इधर द्रोण ने प्रसिद्ध युद्ध-विद्या-निपुण परशुराम से भी अस्त्रविद्या का अध्ययन किया (अध्याय)।

मीमांसा

राजा शांतनु को शिकार के समय वन में सरकंडे (घास विशेष) पर पड़े दो नवजात बच्चे मिले जिनमें एक कन्या तथा एक बालक था। इतनी ही बात है। इसे शरदवान गौतम से जोड़ने के लिए अप्राकृतिक एवं अनगढ़ कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है। किसी की तपस्या पर इंद्र घबराता है, फिर वह उसे डिगाने के लिए अप्सरा भेजता है यह पुराण लेखकों का मोहरा है। जिस स्त्री

की सुंदरता पुराण वाले बखानते हैं, उसे ही कहते हैं कि उसके समान सुंदरी संसार में अन्य स्त्री नहीं थी। वीर्य घास पर गिर जाय तो उससे भला बच्चे पैदा होंगे? इसी तरह द्रोण को द्रोण (पात्र) से पैदा कर लिया गया। वस्तुतः कृपाचार्य, कृपी और द्रोणाचार्य के माता-पिता का पता नहीं था। ये नवजात शिशु के रूप में पाये गये। यही तथ्य है। इसको महिमा मंडित करने के लिए शरदवान गौतम तथा भरद्वाज के वीर्य की अस्वाभाविक एवं प्रकृति-विरुद्ध कल्पना करना यथार्थ ज्ञान और मनुष्यता दोनों को तिरस्कृत करना है। बच्चे कहीं भी मिलें, वे मनुष्य हैं, मूलतः महान हैं। अश्वत्थामा पैदा होते ही अश्व की तरह चिल्लाया, यह भी केवल काव्य है जिसे घटना में जोड़कर भ्रम पैदा करना है। परशुराम श्रीराम के युग में हैं और कौरव-युग में द्रोणाचार्य को शस्त्र-विद्या सिखा दिये। यह काल-विरुद्ध द्रोणाचार्य की गरिमा बढ़ाने के लिए अप्रासंगिक प्रयास है।

. द्रोण का द्रुपद से तिरस्कृत होकर भीष्म द्वारा स्वागत

द्रोण और द्रुपद दोनों शिक्षा ग्रहण करते समय लंगोटिया यार थे। अब द्रुपद पांचाल-नरेश थे और द्रोण निर्धन ब्राह्मण। द्रोण विद्या तो पा गये, परंतु धन से हीन थे। वे अपने पुराने मित्र राजा द्रुपद के पास गये, कुछ धन पाने की इच्छा से और मिलकर उन्होंने राजा द्रुपद से कहा–मैं तुम्हारा मित्र द्रोण हूं, तुमसे मिलने आया हूं।

राजा द्रुपद द्रोण की प्रेम भरी बात को सह न सके और उन्होंने बड़ी रुखायी से कहना शुरू किया–तुम्हारी बुद्धि कच्ची है, जो तुम अपने को मेरा मित्र बता रहे हो। मूढ़! तुम जैसे दरिद्र से राजा की मित्रता कैसी? मनुष्य समय के अनुसार बूढ़ा होता जाता है, वैसी ही उसकी मित्रता बूढ़ी होती जाती है। मेरी और तुम्हारी जो मित्रता थी शक्ति को लेकर थी, हम दोनों विद्यार्थी थे। किसी की मित्रता संसार में अमिट होकर नहीं रहती। समय और क्रोध एक मित्र को दूसरे मित्र से अलग कर देते हैं। इस प्रकार मिटने वाली मित्रता का भरोसा न करो। हम दोनों मित्र थे, इस बात को भूल जाओ। मेरी-तुम्हारी पहले की मित्रता खेल-कूद और पढ़ाई-लिखाई के स्वार्थ की थी। सच्ची बात तो यह है कि धनी और निर्धन की, अशिक्षित और विद्वान की, निर्बल और बलवान की मित्रता हो ही नहीं सकती। अतएव तुम मित्रता की याद भूल जाओ।

द्रोण को द्रुपद की कठोर बात सुनकर बड़ा दुख हुआ। उन्होंने मन में द्रुपद से बदला लेने की भावना बना ली और हस्तिनापुर जाकर कृपाचार्य के

घर में गुप्त रूप से रहने लगे। द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा कृपाचार्य के बाद पांडवों को शिक्षा देने लगे। द्रोण को कोई पहचानता न था। इस प्रकार द्रोण अपनी पत्नी कृपी और पुत्र अश्वत्थामा के साथ कृपाचार्य के घर में निवास करते रहे।

एक दिन कौरव-पांडव कुमार मैदान में गुल्ली-डंडा खेलते थे। उनकी गुल्ली पास के कुएं में गिर गयी। कुआं सूखा था। परंतु गुल्ली कैसे निकले, इसकी सूझ कुमारों को नहीं हो रही थी।

सांवले और दुबले द्रोण बच्चों में पहुंच गये और उन्होंने मुट्ठी भर सींक ली। एक सींक को धन्वा पर चढ़ाकर गुल्ली को बींध दिया। इसके बाद उस सींक को दूसरे-तीसरे आदि सींकों से बींध कर फिर हाथ से खींच लिया और गुल्ली निकल आयी। एक अंगूठी कुआं में फेंककर उसी ढंग से उसे भी निकाल दिया। कुमार बहुत प्रसन्न हुए। द्रोण ने कहा कि अब तुम लोग मेरे निर्वाह का प्रबंध करो। बच्चों ने उनसे उनका परिचय पूछा। द्रोण ने कहा कि भीष्म से यह संदेश बता दो, वे मुझे समझ सकेंगे। भीष्म ने आकर द्रोण का परिचय पाया और समझा कि कुमारों को ये अच्छी शस्त्र-विद्या की सीख दे सकते हैं। इसके बाद द्रोण ने द्रुपद द्वारा किया गया अपना तिरस्कार बताया। उन्होंने कहा कि कृपाचार्य की बहिन कृपी मेरी पत्नी है। मेरा पुत्र अश्वत्थामा है। दूसरे बच्चों को दूध पीते देखकर वह दूध के लिए मचलता है। उसे दूसरे बच्चे पानी में आटा घोलकर कहते हैं कि लो, यह दूध, पी लो। अश्वत्थामा उसे पीकर समझता है कि मैंने दूध पी लिया और नाचने लगता है। यह सब देखकर मैं और मेरी पत्नी कृपी दुखी होते हैं। इसलिए हम तीनों राजा द्रुपद के यहां गये थे कि वे मेरी दरिद्रता में कुछ सहायता करेंगे। परंतु उन्होंने कठोर बात और व्यवहार किया। अंत में उन्होंने इतना ही कहा कि तुम यदि आज रहना चाहो तो यहां एक रात रह सकते हो और रात्रि-भोजन मिल जायेगा। उनके इस कठोर बरताव से अपनी पत्नी और पुत्र के साथ तुरंत उनके राजभवन से चलकर कृपाचार्य के घर में रह रहे हैं।

भीष्म ने कहा कि आप मेरे कुमारों को धनुर्विद्या की सीख दीजिए और मेरे राजभवन में रहकर मनोवांछित भोग भोगिए। इस राज्य को अपना राज्य समझिए। आपकी जो मनोवांछा है, उसको पूरी समझिए (अध्याय)।

मीमांसा

द्रुपद का द्रोण के साथ बरताव उनके मिथ्या अहंकार का परिचायक है। सच है, दो ही जातियां हैं–धनी और निर्धन की। विश्वविद्यालय के एक

विभागाध्यक्ष प्रोफेसर अपनी संतान के विवाह में अपने पिता को इसलिए नहीं बुलाये कि वे अनपढ़ हैं जबकि उन्होंने ही इनको धन देकर पढ़ाया था; और जब वे मोह–वश स्वयं आये तो उनको विभागाध्यक्ष महोदय ने खदेड़ दिया। संसार कैसा निष्ठुर है! आदमी आदमी नहीं रहता, अपितु वह जिससे जुड़ता जाता है उसी का उसे अभिमान हो जाता है। यहीं से वह निष्ठुर बनता है।

. कौरव–पांडव कुमारों के शिक्षण–परीक्षण तथा एकलव्य

द्रोण हस्तिनापुर में भीष्म द्वारा अर्पित धन–धान्य तथा समस्त सुविधासंपन्न भवन में सपरिवार रहने लगे और राजकुमारों को अस्त्र–शस्त्र–विद्या की सीख देने लगे। एक दिन द्रोण ने राजकुमारों से कहा कि मेरे मन में एक कार्य करने की इच्छा है। अस्त्र–शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद वह काम तुम लोगों को करना पड़ेगा। बताओ, इस विषय में तुम्हारे क्या मंतव्य हैं? कौरव कुमार चुप रहे, किंतु अर्जुन ने द्रोण की इच्छा पूर्ण करने की प्रतिज्ञा की। इस पर द्रोण ने भावविभोर होकर अर्जुन का मस्तक सूंघा और उन्हें हृदय से लगाकर हर्ष के अतिरेक में रो पड़े।

द्रोण सभी कुमारों को शस्त्र–विद्या की सीख देने लगे। दूसरे राजकुमार भी उनके पास शस्त्र–विद्या सीखने आने लगे। अंधकवंशी, वृष्णवंशी यादव, कर्ण आदि सब द्रोण से शिक्षा प्राप्त करने लगे। अर्जुन धनुर्विद्या में आगे थे। द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा था। द्रोण उसको अधिक सीख देने का मोह रखते; परंतु अर्जुन अपनी कुशलता के कारण अश्वत्थामा से पीछे नहीं रहते थे। अर्जुन आदि ने हाथी, घोड़ों, रथों और भूमि पर रहकर युद्ध करने की शिक्षा पायी। उन्होंने गदा, तलवार, तोमर, प्रास तथा अन्य अस्त्र–शस्त्रों की शिक्षा ग्रहण की।

निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य था। वह द्रोण के पास आकर और उनका शिष्य होकर शस्त्र–विद्या ग्रहण करना चाहता था। परंतु उसे निषाद समझ कर द्रोण ने शिष्य नहीं बनाया। एकलव्य द्रोण का प्रणाम करके चला गया और उसने द्रोण की एक मिट्टी की मूर्ति बनायी, और उसी में द्रोण के प्रति गुरु की भावना करके स्वतः धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा। एकलव्य की निष्ठा, प्रतिभा और परिश्रम का यह परिणाम हुआ कि वह कुछ दिनों में प्रवीण धनुर्धारी हो गया।

. कौरव-पांडव कुमारों के शिक्षण-परीक्षण तथा एकलव्य

एक दिन कौरव और पांडव-कुमार द्रोण की आज्ञा से शिकार के लिए वन में चले। उनके पीछे एक मनुष्य चल रहा था जिसके साथ एक कुत्ता था। वह कुत्ता एकलव्य के पास पहुंच गया और वह उसे देखकर भूंकने लगा। एकलव्य ने अपनी कलाबाजी से कुत्ते के मुंह में सात बाण मारकर उसका भूंकना बंद कर दिया। कुत्ते का मुंह बाणों से भरा था। उसी दशा में वह पांडवों के पास आया। पांडव आश्चर्य-चकित रह गये। पांडव लज्जित होकर बाण मारने वाले की प्रशंसा करने लगे। फिर वे उस निपुण धनुर्धारी की खोज करने लगे। उन्होंने एक जगह देखा कि एक युवक धनुर्विद्या के अभ्यास में रत है। पांडव उसे पहचान न सके, इसलिए उन्होंने उसका परिचय पूछा–तुम कौन हो, किसके पुत्र हो?

युवक ने कहा–मैं निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र और द्रोणाचार्य का शिष्य एकलव्य हूं। पांडव राजधानी में आकर द्रोण से मिले और वन में जो एकलव्य की घटना घटी थी उसे बताया। अर्जुन ने द्रोण से कहा–आचार्य! आपने उस दिन मुझे एकांत में अपने गले से लगाकर कहा था कि मेरा कोई भी शिष्य तुमसे बढ़कर नहीं होगा, फिर आपका यह शिष्य एकलव्य कैसे इतना कुशल निकल गया जो मुझसे बढ़कर है?

द्रोण एकलव्य के विषय में देर तक सोचते रहे, फिर अर्जुन को लेकर वे वन में गये। एकलव्य के पास पहुंचे। एकलव्य ने उठकर द्रोण का अभिवादन तथा सत्कार किया। द्रोण ने कहा–वीर! यदि तुम मेरे शिष्य हो, तो मुझे गुरुदक्षिणा दो। एकलव्य ने कहा–गुरुदेव स्वयं आज्ञा दें। मेरी कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो गुरुदेव को न दी जा सके। द्रोणाचार्य ने कहा–तुम मुझे अपने दाहिने हाथ का अंगूठा दे दो। एकलव्य द्रोणाचार्य का यह दारुण वचन सुनकर विचलित नहीं हुआ और सदा सत्य पर अटल रहने वाले उस वीर ने प्रसन्न मन से बिना कुछ सोचे-विचारे अपने दाहिने हाथ का अंगूठा काटकर द्रोण को दे दिया। इस दारुण घटना से अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए। उनकी धनुर्विद्या में अद्वितीयता बनी रही।

इधर गदा युद्ध में दुर्योधन और भीम निपुण निकले। ये दोनों भी एक दूसरे के प्रति क्रोध में भरे रहते थे। अश्वत्थामा धनुर्वेद में निपुण निकले। नकुल और सहदेव तलवार चलाने में आगे निकले। युधिष्ठिर रथ पर बैठकर युद्ध करने में निपुण हुए। किंतु अर्जुन सब प्रकार की युद्ध कला में निपुण थे।

द्रोण ने एक नकली गीध बनवाकर पेड़ के अग्रभाव पर रखवा दिया और राजकुमारों से कहा कि इसको अपने बाण से बींधो। राजकुमारों को उस गीध के नकलीपन का पता नहीं था। युधिष्ठिर से लेकर दुर्योधन आदि तक वह काम न

कर सके, किंतु अर्जुन ने किया। इसके बाद द्रोण गंगा में स्नान करने गये। द्रोण को ग्राह ने पकड़ लिया, तो अर्जुन ने पांच तीखे बाणों से ग्राह को मारकर द्रोण को बचाया। इससे द्रोण बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अर्जुन को ब्रह्मशिर नामक अस्त्र दिया (अध्याय –)।

मीमांसा

द्रोण की यह क्रूर दक्षिणा की मांग कि एकलव्य अपने दाहिने हाथ का अंगूठा काट कर दे दे और एकलव्य के अंगूठा देने पर अर्जुन की प्रसन्नता कुटिल और हिंस्र बभनई–ठकुरई तो है ही, भोग–प्रतिष्ठा की घृणित भावना भी है। ऐसी ही धारणा का परिणाम है कि गृहकलह में उलझकर कौरव–पांडव और यदुकुल का सर्वनाश हुआ।

एकलव्य का निर्मल व्यक्तित्व सदैव पूज्य रहेगा।

. राजकुमारों का अस्त्र–कौशल और कर्ण का आगमन

धृतराष्ट्र की आज्ञा से विशाल रंगभूमि बनी। राजाओं, रानियों, विद्वानों, सामान्य नागरिकों के लिए बैठने की जगहें बनीं। धृतराष्ट्र को मानसिक पीड़ा थी कि वे राजकुमारों के अस्त्र–कौशल नहीं देख सकेंगे, क्योंकि वे जन्मांध थे। धृतराष्ट्र ने स्वयं कहा–"मैं जन्मांध हूं। जिनको आंखें हैं उनके सौभाग्य पाने के लिए मैं तरस रहा हूं, क्योंकि वे मेरे पुत्रों के अस्त्र–कौशल देखेंगे।"

राजकुमार दास्ताने पहने, कमर कसे, पीठ पर तूणीर बांधे और हाथों में धनुष लिए रंगभूमि में आये। सब अपना–अपना कौशल दिखाने लगे। धन्वा–बाण, तलवार, कुश्ती, गदा, सभी प्रकार के कौशल दिख रहे थे। धृतराष्ट्र को विदुर और गांधारी को कुंती राजकुमारों का कौशल बताते जा रहे थे।

रंगभूमि में भीम और दुर्योधन दोनों वीर उतरे। दोनों के पक्षपाती दर्शक दो भागों में बंट गये। एक कहता–"अहो, दुर्योधन कैसा अद्‌भुत पराक्रम दिखा रहे हैं।" दूसरा पक्ष कहता–"वाह, भीम गजब का हाथ मारते हैं।" अश्वत्थामा ने दोनों से कहा–भीम और दुर्योधन! तुम्हारे आचार्य का आदेश है कि तुम दोनों युद्ध बंद करो।

वीरों की अनेक अस्त्र-कलाएं चल रही थीं। इतने में कर्ण आये। द्वारपालों ने उन्हें घूर कर देखा, क्योंकि कर्ण अत्यंत भव्य व्यक्तित्व के थे। उन्होंने कर्ण को सभास्थल में प्रवेश दिया। सभा में पहुंचते ही उनके व्यक्तित्व से सब प्रभावित हुए। कर्ण ने गर्जते हुए कहा–अर्जुन! तुमने जितनी अस्त्र-कला दिखायी है, मैं उससे अद्‌भुत कर्म दिखाऊंगा। इसलिए तुम गर्व न करो। कर्ण की बात सुनकर हर्ष से पूरी सभा एक क्षण के लिए वैसे ही उठ गयी, जैसे उन्हें कोई यंत्र ने उठा दिया हो। कर्ण ने द्रोण से आज्ञा लेकर, जो कुछ अर्जुन ने प्रदर्शन किया था, वह कर दिया।

दुर्योधन कर्ण से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा–कर्ण, कौरवों का राज्य आपका है। अर्जुन ने लज्जित होकर कहा–कर्ण, तुम बिना बुलाये आये हो। कर्ण ने कहा कि रंगभूमि सबकी है। आक्षेप करना दुर्बलों का लक्षण है। साहस हो, तो बाणों से बात करो। इतनी ललकार सुनकर अर्जुन आचार्य द्रोण से आज्ञा लेकर युद्ध के लिए कूद पड़े। रंगभूमि के नर-नारियों में कर्ण और अर्जुन को लेकर दो दल हो गये। कुंती असली भेद जानती थी कि कर्ण और अर्जुन दोनों मेरे सहोदर पुत्र हैं। अतः वह चिंता से मूर्च्छित हो गयी। विदुर जी ने दासियों से कहा कि कुंती के शरीर पर चंदन मिला हुआ जल छिड़ककर उन्हें सावधान करो। जाग्रत होने पर कुंती को कोई सूझ नहीं हुई कि वह कैसे उनको युद्ध करने से रोके।

कृपाचार्य ने कहा–कर्ण! अर्जुन तो कुंती और पांडु के पुत्र हैं; महाबाहो, तुम्हारे माता-पिता तथा कुल-गोत्र क्या हैं? इसे जान लेने के बाद ही अर्जुन तुम से युद्ध करेंगे; क्योंकि राज-पुरुष हीन कुल के लोगों से युद्ध नहीं कर सकते।

दुर्योधन ने कहा–राजाओं की तीन श्रेणियां हैं–उत्तम कुल में उत्पन्न पुरुष, शूरवीर तथा सेनापति। यदि अर्जुन राजा से भिन्न पुरुष से युद्ध नहीं कर सकते, तो मैं कर्ण का अभी अंगदेश के राज्य पर अभिषेक करता हूं। इसके बाद धृतराष्ट्र और भीष्म की आज्ञा लेकर अभिषेक की सामग्री मंगायी गयी और उससे कर्ण का राज-तिलक किया गया। कर्ण ने दुर्योधन का उपकार माना और बदले में मैं आपको क्या दूं, पूछा। दुर्योधन ने कहा–मैं तुमसे न टूटने वाली मित्रता चाहता हूं। कर्ण ने कहा–वैसे ही होगा। फिर दोनों गले मिले।

कर्ण का पालक पिता बूढ़ा अधिरथ लाठी के सहारे रंगभूमि में अपने पोष्य-पुत्र का राज्याभिषेक देखने आया, उसे देखकर कर्ण धनुष त्यागकर राजसिंहासन से नीचे उतर आया, और अपने अभिषिक्त सिर को पिता के चरणों में रख दिया। अधिरथ बेटा-बेटा कहकर प्रसन्न हुआ। उसने कर्ण को सीने से

लगा लिया और उसके अभिषिक्त गीले सिर को अपने आंसुओं से पुनः अभिषिक्त कर दिया।

भीम उक्त घटना देखकर समझ गये कि कर्ण सूत-पुत्र हैं। अतएव वे व्यंग्य में हंसते हुए बोले–"अरे ओ सूत-पुत्र! तू अर्जुन के हाथों मरने योग्य भी नहीं है। तेरे कुल के अनुरूप तो है कि तू अपने हाथों में चाबुक ले। नराधम! यज्ञ का पुरोडास जैसे कुत्ता नहीं पा सकता, वैसे तू अंगदेश का राज्य भोगने योग्य नहीं है।" दुर्योधन ने भीम से कहा–"तुम्हें ऐसी कटु बातें नहीं करना चाहिए। क्षत्रियों के बल की प्रधानता है। शूरवीर और नदियों की उत्पत्ति जानना कठिन है। कितने ब्राह्मण क्षत्रियों से उत्पन्न हुए हैं। विश्वामित्र क्षत्रिय होकर ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए। द्रोण और कृपाचार्य की उत्पत्ति दोना और सरकंडे से हुई। तुम पांचों पांडवों की उत्पत्ति जिस प्रकार हुई है, वह सब मुझे ठीक से मालूम है। कर्ण तो पूरी पृथ्वी का सम्राट होने योग्य है। जिसे मेरा यह बरताव नहीं सहा जाता हो, वह मेरे सामने युद्ध में आ जाय।" यह बात सुनकर सभा के लोगों ने दुर्योधन को साधुवाद दिया, साथ-साथ हलचल मच गयी। संध्या समय आ गया था। दुर्योधन कर्ण का हाथ पकड़कर मशाल के प्रकाश में सभा से बाहर निकल आया। दर्शकों में कुछ लोग अर्जुन की, कुछ लोग कर्ण की और कुछ लोग दुर्योधन की प्रशंसा करते हुए चल दिये। कर्ण की प्रतिभा देखकर कुंती प्रसन्न हुई, परंतु उसने इस भाव को बाहर प्रकट नहीं किया। दुर्योधन प्रसन्न था। युधिष्ठिर को भी विश्वास हो गया कि कर्ण के समान दूसरा वीर नहीं है (अध्याय -)।

मीमांसा

कृपाचार्य की कुशलता ने अर्जुन और कर्ण का युद्ध टाल दिया, यह अच्छा हुआ। वैसे कर्ण और अर्जुन योग्य होते हुए अभिमानी और लड़ाकू हैं। भीम छिछिली बात करते हैं। यहां दुर्योधन का वक्तव्य सारगर्भित है। राजसिंहासन पर बैठे कर्ण का अपने पोषक-पिता अधिरथ के मैले-कुचैले चरणों में, राज्य-सिंहासन से उतरकर सिर रख देना आज के पढ़े-लिखे बाबुओं के लिए प्रेरक है जो अपने अनपढ़ पिता को सबके बीच में प्रणाम नहीं करना चाहते। यह सब समय के लिए और सबके लिए प्रेरणाप्रद है।

. द्रोण का द्रुपद से बदला लेना

कौरव-पांडव-राजकुमारों की अस्त्र-शस्त्र परीक्षा हो गयी। अब द्रोण को लगा कि द्रुपद से बदला लेने का समय आ गया है। उन्होंने राजकुमारों से कहा

कि अब तुम लोग मुझे गुरुदक्षिणा दो। पांचाल-नरेश द्रुपद को बांधकर मेरे पास ले आओ।

सभी राजकुमार फौज-फक्कड़ के साथ चलकर पांचाल राज्य पर धावा कर दिये। सर्वत्र मार-काट मच गयी। द्रुपद भी सेना लेकर भिड़ गये। पहले कौरव-दल द्रुपद से युद्ध करता रहा। अंततः द्रुपद की सेना की मार से कौरव-सेना बहुत कट गयी। इसके बाद अर्जुन द्रोण को प्रणाम कर और युधिष्ठिर से यह कहकर कि आप युद्ध न करें, भीम, नकुल, सहदेव तथा सेना को लेकर पांचाल-नरेश की सेना पर टूट पड़ें। बहुत मार-काट के बाद अर्जुन राजा द्रुपद तथा उनके मुख्य मंत्रियों को कैद कर द्रोण के पास ले आये और उन्हें गुरुदक्षिणा के रूप में द्रोण के सामने समर्पित कर दिये।

द्रोण ने द्रुपद से कहा-राजन! मैंने तुम्हारे देश को रौंद दिया। तुम्हारी राजधानी मिट्टी में मिला दी। अब तुम मेरे वश में हो। क्या अब पुरानी मित्रता चाहते हो? इसके बाद द्रोण ने हंसकर पुनः कहा-भय मत करो। मैं क्षमाशील ब्राह्मण हूं। तुम मेरे बचपन के लंगोटिया यार हो, मित्र हो। मैं तुमसे पुनः मैत्री के लिए प्रार्थना करता हूं। मैं पांचाल राज्य का आधा भाग तुम्हें देता हूं। द्रुपद! तुमने कहा था कि जो राजा नहीं है वह राजा का मित्र नहीं हो सकता। इसलिए मैंने तुम्हारा राज्य जीत लिया। गंगा नदी के दक्षिण तुम राज्य करो और उसके उत्तर मैं राज्य करूं। यदि अब उचित समझो तो मुझसे मित्रता करो। द्रुपद ने द्रोण से कहा-ब्रह्मन! आप महान और पराक्रमी हैं, उदार हैं। मैं आपसे बहुत प्रसन्न हूं। मैं आपसे मैत्री चाहता हूं। इस प्रकार पांचाल देश दो भागों में बंट गया। गंगा के दक्षिण द्रुपद राज्य करने लगे और उत्तर द्रोण। द्रोण ने उत्तर-पांचाल से लगे अहिच्छत्र नामक राज्य को भी युद्ध करके जीत लिया और अपने देश में मिला लिया (अध्याय)।

मीमांसा

यह द्रोण का ब्राह्मणत्व है! कैद कर द्रुपद जब सामने लाये गये तब भी द्रोण ब्राह्मणत्व की डींग हांकते हैं कि मैं क्षमाशील ब्राह्मण हूं। उनके ब्राह्मणत्व का और घिनौना रूप प्रकट होता है जब वे अपने उत्तर-पांचाल से लगे देश अहिच्छत्र को भी हड़पकर अपने राज्य में मिला लेते हैं। अस्त्र-शस्त्र विद्या को पढ़ाने और प्रशिक्षित करने वाले का मन जैसे क्रूर होना चाहिए वही द्रोण का हुआ।

द्रोण कौरव–पांडवों के गुरु होकर हस्तिनापुर में ऐश्वर्य भोग कर ही रहे थे; अपने मन के अहंकार को मारकर उठे हुए क्रोध और बदला लेने की भावना को शांत कर लेते, तो उनका उत्तम आदर्श होता, उन्हें शांति मिलती। यह काला सर्प अहंकार सब जगह कलह और हिंसा कराता है।

. युधिष्ठिर का युवराज पद, पांडवों की वीरता और धृतराष्ट्र की चिंता

राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को योग्य समझकर उन्हें युवराज पद दिया। युधिष्ठिर राज–काज की बागडोर सम्हालकर कुशलता से राज्य व्यवस्था करने लगे। साथ–साथ अर्जुन, भीम आदि भाइयों को लेकर अनेक राजाओं पर विजय करने लगे। अर्जुन ने सौवीर, यवन आदि देशों को युद्ध में जीत लिया। पांडवों की सर्वत्र वाहवाही होने लगी। यह सब समझकर धृतराष्ट्र का मन दूषित हो गया। उनको चिंता हो गयी और उनकी नींद उड़ गयी। उन्होंने अपने कणिक नाम के मंत्री को बुलाया जो अर्थशास्त्र और राजनीति का ज्ञाता था। उससे राजा धृतराष्ट्र ने कहा–पांडवों की बराबर सुकीर्ति होती जाती है। उनकी उन्नति और ख्याति होती जा रही है। यह जानकर मेरे मन में ईर्ष्या की ज्वाला बढ़ गयी है। कणिक! तुम बताओ कि मुझे उनके साथ संधि करना चाहिए कि विग्रह? मैं तुम्हारी बात मानूंगा और वैसा करूंगा।

कणिक ने प्रसन्न होकर कहा–मुझे बुरा न मानियेगा। मैं राजनीति की बात कहता हूं। राजा को सदैव दंड देने पर तैयार रहना चाहिए। वह अपनी दुर्बलता न प्रकट करे, किंतु दूसरों को दुर्बल देखकर उन पर चढ़ बैठे। दंड देने वाले राजा को प्रजा डरती है। शत्रु को शरण आया जानकर दया न करे। शत्रु को मार देने पर ही निर्भयता होती है। धर्म का ढोंग करके शत्रु को भुलावा में डालकर फिर उचित अवसर पर उसे मार डाले। लगभग नब्बे श्लोकों में कणिक ने जो कुटिल और क्रूर राजनीति का उपदेश दिया है वह जनतंत्र से तो बहुत दूर है ही, राजतंत्र से भी दूर है। उसकी पूरी सीख में क्रूर हिंसा है।

दुर्योधन चिंतित होकर राजा धृतराष्ट्र के पास आये और उन्होंने राजा से कहा कि नगर में सर्वत्र युधिष्ठिर की राज्यव्यवस्था की प्रशंसा हो रही है। इससे तो इन्हीं का राज्य दृढ़ होगा। आगे इन्हीं के वंशजों को राज्य मिलेगा। हम निरर्थक हो जायेंगे। उधर कणिक की कुटिल राय और इधर अपने पुत्र दुर्योधन

की चिंता की बात सुनकर धृतराष्ट्र डांवाडोल हो गये। दुर्योधन ने दुःशासन, शकुनि और कर्ण से राय लेकर धृतराष्ट्र से कहा–पिता जी! आप किसी अच्छी युक्ति से पांडवों को यहां से वारणावत नगर भेज दें। धृतराष्ट्र ने कहा–पांडु बड़े अच्छे थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर धर्मपरायण हैं। अतएव उनको बलपूर्वक उनके बाप-दादों के राज्य से हटाकर अलग कैसे किया जा सकता है? दुर्योधन ने कहा–धन-कोश और मंत्रिमंडल मेरे अधीन हैं। मैं लोगों को अपने वश में कर लूंगा। आप किसी कोमल उपाय से पांडवों को वारणावत नगर भेज दें।

धृतराष्ट्र ने कहा–मेरे मन में भी यही बात निरंतर घूम रही है; परंतु यह पापपूर्ण विचार है। इसलिए मैं इसे खुलकर प्रकट नहीं कर सकता। भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य इनमें से कोई भी यह राय नहीं देंगे कि पांडव यहां से चले जायं। यदि हम पांडवों के साथ ऐसा व्यवहार करेंगे, तो लोग हमें वध के योग्य क्यों न समझेंगे?

दुर्योधन ने कहा–भीष्म तो मध्यस्थ हैं। अश्वत्थामा मेरे पक्ष में हैं। उनके पिता द्रोण विवश होकर मेरे साथ रहेंगे। फिर कृपाचार्य अपने बहनोई द्रोण तथा भानजे अश्वत्थामा का साथ कैसे छोड़ेंगे। अतएव ये सब मेरे साथ रहेंगे। विदुर पैसे के गुलाम हैं। उनका मन पांडवों की तरफ होकर भी वे अकेले मुझसे अलग नहीं जा सकते। इसलिए कोई चिंता नहीं है। आप कुंती सहित पांडवों को वारणावत आज ही भेज दीजिए। पांडवों की उपस्थिति मेरे हृदय का कांटा है जो मुझे नींद नहीं लेने देती। आप उन्हें भेजकर मेरे दुख को दूर कर दीजिए (अध्याय -)।

मीमांसा

ईर्ष्या की आग से दुर्योधन तथा धृतराष्ट्र दोनों जल रहे हैं। उनके सहायक शकुनि आदि हैं ही। उपर्युक्त दुर्विचार इन लोगों को मीठा लगता है, परंतु यही सब इन्हीं का विनाश करेगा।

. पांडवों का वारणावत-निवास और गुप्त रूप से पलायन

दुर्योधन तथा उनके छोटे भाइयों ने मंत्रियों को धन देकर उनको अपने वश में कर लिया। अतएव लोग सर्वत्र प्रचार करने लगे कि वारणावत नगर बड़ा

मनोहर है। वहां शिव की पूजा के लिए जो विराट मेला लग रहा है वह तो बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यह सब सुनकर पांडवों का मन वहां जाने के लिए उत्सुक हुआ। पांडवों का मन उत्सुक जानकर धृतराष्ट्र उनके पास जाकर बोले–मेरे मंत्री बारंबार कहते हैं कि वारणावत नगर बड़ा सुंदर है। पुत्रो! यदि तुम लोग वहां जाना चाहो तो जाकर वहां का आनंद लो। वहां कुछ दिन विहार करके पुनः हस्तिनापुर आ जाना।

धृतराष्ट्र की उक्त बात सुनकर युधिष्ठिर उनके कुटिल मन की बात जान गये, किंतु अपने को असहाय जानकर 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी बात मान ली। इसके बाद वे भीष्म, विदुर, द्रोण, गांधारी आदि से मिलकर दीन भाव से धीरे-धीरे इस प्रकार कहे–हम परिवार सहित महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से वारणावत के मेले में जा रहे हैं। आप सबके मुझे आशीर्वाद चाहिए। सब ने उनकी मंगल कामना की और कुंती सहित पांचों पांडव वारणावत चल पड़े।

दुर्योधन ने जब जाना कि पांडव कुंती सहित वारणावत जा रहे हैं, तब अपने विश्वस्त मंत्री 'पुरोचन' को कहा कि वारणावत नगर के पास एक उत्तम कीमती भवन तैयार कराओ जिसमें सारी सुविधाएं हों। उस भवन की दीवारों में तेल, घी, राल, सन तथा अन्य अग्नि-भड़काऊ पदार्थों का ऐसा लेप करवाओ जिसे पांडव तथा अन्य कोई समझ न सके। जब पांडव विश्वस्त होकर उसमें बहुत दिन आराम से रह लें, तब उनके सोते समय गुप्त रूप से आग लगवा दो जिससे वे जल मरें। इससे लोगों को लगेगा कि घर में किसी कारण-वश अपने आप आग लग गयी। इससे हमारे ऊपर कोई संदेह नहीं करेगा। पुरोचन दुर्योधन का विश्वस्त था। वह उसके बताये अनुसार वारणावत नगर के पास राजभवन बनवाया।

पांडवों को हस्तिनापुर से वारणावत जाते देख-सुनकर नगरवासी तथा प्रजा के लोग दुखी हुए। धृतराष्ट्र और दुर्योधन का षड्यंत्र उन्हें समझ में आया। परंतु युधिष्ठिर ने पुरवासियों से कहा कि राजा धृतराष्ट्र हमारे सम्माननीय पिता, गुरु एवं पूज्य हैं। वे जो कहें मुझे वैसा करना है। आप सब मुझे आशीर्वाद दें।

विदुर ने युधिष्ठिर को सावधान कर दिया कि वारणावत में तुम लोग जिस घर में रहोगे उसमें आग-भड़काऊ सामग्री लगी है। सावधान!

पांडव कुंती सहित वारणावत पहुंचे। दुर्योधन का कपटी मंत्री युधिष्ठिर का बड़ी गरमजोशी से सत्कार करके उन्हें लाक्षागृह में ठहरा दिया जो सब सुविधाओं से संपन्न था। युधिष्ठिर सावधान थे। उन्होंने भाइयों से कहा कि यदि

हम लोग यहां से भाग निकलें, तो दुर्योधन अपने आदमियों से हमें मरवा सकता है। उसके पास खजाना और आदमी हैं। हम असहाय हैं। अतएव हम लोग सावधानी से काम लें और विश्वस्त की तरह रहें, जिससे कोई जान न पावे कि ये सावधान हैं।

विदुर ने एक खनक को भेज दिया था। उसने भवन के भीतर से नीचे से निकलने के लिए एक सुरंग तैयार कर दिया था जो गुप्त थी।

पांडवों को वहां एक वर्ष (आदिपर्व, ,) तक विश्वस्त होकर रहते देख पुरोचन को प्रसन्नता हुई। युधिष्ठिर ने भाइयों से कहा कि पुरोचन हमें पूर्ण विश्वस्त समझ रहा है। "इस आयुधागार में आग लगाकर, पुरोचन को जलाकर और इसके भीतर छह मनुष्यों को रखकर हम इस प्रकार भाग निकलें कि कोई जान न पावे।"

कुंती ने एक भोज रचा। उसमें बहुत-से लोग आये, खाये-पीये और अपने घर चले गये। परंतु एक भीलनी अपने पांच पुत्रों के साथ आयी। वे सब खाये-पीये और शराब पीकर उस भवन में सो गये। भीम ने रात में भवन में आग लगायी। पुरोचन जलकर मर गया और भीलनी अपने पांचों पुत्रों के साथ जलकर मर गयी। पांडव कुंती सहित सुरंग से निकल गये और सुरंग ऐसा पाट दिये कि उसे कोई समझ न सके। इधर विदुर जी ने गुप्त रूप से नाव भेजकर पांडवों को गंगा पार करा दिया (अध्याय -)।

मीमांसा

पांडवों की यह चाल थी कि लोग यह समझें कि माता कुंती सहित पांडव जल मरे। इसलिए उन्होंने कुंती से भोज रचवाया। लोगों को खिला-पिलाकर विदा कर दिया। इन लोगों ने ऐसी भीलनी को चुन रखा था जिसके पांच पुत्र थे। भील भी देह से बलवान होते हैं। उन्हें प्रलोभन देकर खिला-पिला कर और शराब खूब पिलाकर अशक्त कर दिया, और वे जल मरे। युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को सलाह देते हुए कहा ही था-"इस आयुधागार में आग लगाकर, पुरोचन को जलाकर और इसके भीतर छह मनुष्यों को रखकर हम इस प्रकार भाग निकलें कि कोई जान न पावे।" इस कथन में यह वचन ध्यातव्य है *"षट् प्राणिनो निधायेह"* छह मनुष्यों को इसमें रखकर।

. **आयुधागारमादीप्य दग्ध्वा चैव पुरोचनम्।**
षट् प्राणिनो निधायेह द्रवामोऽनभिलक्षिताः आदि पर्व, ,

युधिष्ठिर जैसे राजा लोग भी अपना काम बनाने के लिए निरपराध छह प्राणियों को प्रलोभन देकर, बहला–फुसलाकर, खिला–पिला कर उनका दाह कर दिये।

ध्यान देने योग्य है कि राजभवन में कोई भीलनी अपने पुत्रों को लेकर अचानक रह ले, यह संभव नहीं है। अन्य लोग भी उसमें नहीं रह सकते। अतएव भीलनी का अपने पांच पुत्रों के साथ जल मरना पांडवों की चालबाजी है। इससे यह हुआ कि पांडव सकुशल निकल गये और कुछ दिनों तक कौरव–पक्ष उनसे यह जानकर निश्चिंत हो गया कि कुंती सहित पांडव जल मरे।

. भीम द्वारा हिडिंब–वध और हिडिंबा से घटोत्कच की उत्पत्ति

वारणावत में कुंती सहित पांचों पांडव जल मरे यह समाचार सुनकर धृतराष्ट्र ने विलाप किया और पुत्रों सहित उन्हें जलांजलि दी। विदुर ने उनके साथ दिखावा मात्र जलांजलि दी, क्योंकि वे जानते थे कि पांडव सुरक्षित हैं। इधर कुंती सहित पांडव गंगा के दक्षिण छोर जंगल में पहुंचे। रात नींद न ले पाने से पीड़ित, रास्ता भी अपरिचित; अतएव पांडव दुखी हुए। एक जगह सब धरती पर सो गये। केवल भीम जागते रहे।

हिडिंब नाम का राक्षस था जो मनुष्य–भक्षी था। उसने पांडवों को सोते देखा। उसने अपनी बहिन हिडिंबा से कहा कि तुम पता लगाओ ये सोते आदमी कौन हैं। इन्हें खाना है। हिडिंबा आयी। भीम जागते थे। उन्हें देखकर वह मोहित हो गयी। उसने भीम को अपना पति बनाने का प्रस्ताव रखा। भीम ने कहा, अभी मेरे बड़े भाई अविवाहित हैं, फिर मैं तुमसे विवाह करके 'परिवेत्ता' कैसे बनूं? परिवेत्ता का अर्थ है विवाहित छोटा भाई जिसके बड़े भाई का विवाह नहीं हुआ है।

अंततः हिडिंब राक्षस भीम के सामने आया और वह भीम द्वारा मारा गया। भीम हिडिंबा को मारना चाहते थे; परंतु युधिष्ठिर तथा कुंती ने रोक दिया। वह भीम की पत्नी बनना चाहती थी, इस बात को कुंती और युधिष्ठिर ने स्वीकार लिया। भीम और हिडिंबा से घटोत्कच नाम का बालक जन्म लिया। कुछ दिनों में हिडिंबा पांडवों का साथ छोड़कर और उन्हें बताकर कि अब मेरा आपके पास रहने का समय पूरा हो गया, अतएव मैं जा रही हूं, चली गयी।